प्रस्तावना ।

सब प्रकारके साहित्यका अभ्युदय होना देशका अभ्युदय होना है । लौकिक
तिके लिए व्यावहारिक शास्त्रोंकी अवश्य उन्नति होनी चाहिए । किसी समय
ारा भारतीय संस्कृत साहित्य चारों प्रकारके पुरुषार्थ-सम्बन्धी ग्रन्थोंसे भरा
था और उसीका फल था कि हम भूमंडलके सम्राट् थे । आज यह स्थिति
ी है । आर्थिक ग्रन्थोंका कोई ठिकाना नहीं है । हमें सबसे बड़ी आवश्यकता
ने व्यावहारिक साहित्यके उत्पन्न करनेकी है । जब हम इंग्लैंड, जापान,
न्स, जर्मनी आदि देशोंके साहित्यकी ओर देखते हैं तो सहसा ज्ञान पड़ता
कि इसी साहित्यका प्रभाव है जो इन देशोंके रहनेवाले इतने फले-फूले हैं ।
र जब कभी इनकी पाशविक वृत्तिका स्मरण हो आता है तब यह विचार
आता है कि इनके यहाँ यथार्थ धार्मिक साहित्य नहीं है । सत्यके नाते कहना
ाहिए कि भारतीय धार्मिक साहित्यका हमें अभिमान है और वह उचित भी
। इसी तरह हमारा आर्थिक साहित्य उपलब्ध होता तो उसका भी अवश्य
भिमान होता । उसकी हमें खोज करते रहना चाहिए और नवीन दृष्टिसे
च्छी तरह अवलोकन करके अपना व्यावहारिक साहित्य बहुत शीघ्र तैयार-
रना चाहिए । क्या अर्थनीति, क्या समाजनीति, क्या राजनीति, क्या व्यवहार-
ति, हमें सब प्रकारकी रीति-नीति-व्यवस्था आदिके सहज और उत्तम ग्रन्थ तैयार
रने चाहिए । यदि इन ग्रन्थोंके प्रचारसे हमें अपने लौकिक कर्तव्यों और स्व-

ome across any good reason why India except in a
w specially favoured industries like those associa-
d with cotton and jute, should be an exception to
e rule. This is an issue that before long will have
be squarely faced and threshed out. "

इन वाक्योंके पढ़नेवालोंके जीमें यह बात उठ सकती है कि भारतके हितके
ए भारतका शासन किये जानेकी बात माननेवाले और ऐसे विचार रखनेवाले
र्ड मिण्टो क्यों न यहाँपर रक्षितनीति चलानेका कानून बना सके ? इसका
तर अनेक पर्दोमें छुपा हुआ पड़ा है जो समय पर स्वय प्रकट होगा और
हुत सम्भव है कि वर्तमान यूरोपके महा सग्रामके अन्त हुए बाद साम्राज्य-
ठनके समय ये गाँठें खुलें। इस पुस्तकमें साधारणतया व्यापारियोंको जिन
न बातोंकी आवश्यकता है, उन उन बातोंपर छोटे छोटे पाठ दिये हैं। पुस्त-
को जहाँतक होसका है सरल किया है।

अन्तमें हम उन सब ज्ञात और अज्ञात महाशयोंको धन्यवाद देते हैं कि
नके लिखे हुए ग्रन्थों–लेखों आदिसे मुझे इस विषयमें ज्ञान हुआ और विशेष
न्यवाद व्यापारोपयोगी पाठमालाके लेखक श्रीयुत जीवनलाल अमरसी मेहताको
जिनकी पुस्तकसे हमें पूरी पूरी सहायता मिली है।

नवरत्न-सरस्वती-भवन,
झालरापाटन (राजपूताना)।
शाख कृष्ण १० स० १९७३

गिरिधर शर्मा।

ता सार्वभौम–सत्ताके समान ही है। इसीसे व्यापार एक स्वतन्त्र और अत्यन्त गहन शास्त्र है। व्यापार एक उत्तमसे उत्तम कला है। व्यापार अनेक दुर्घट और गहन शास्त्रोंका एकीकरण है। व्यापारी मानवी स्वभाव और सृष्टिपरकी सत्ताको अपने हाथमें रखता है। व्यापारी मनुष्य-स्वभावको खूब पहिचानता है। व्यापारीका काम मनुष्यकी आवश्यकतायें और इच्छायें पूर्ण करनेका है। व्यापारीको—एकमात्र व्यापारीको ही—इस बातका अधिकार, इस बातका मान है—व्यापारीमें ही इस बातका चातुर्य—इस बातकी सत्ता—है कि, वह लोगोंकी सम्पत्तिका, लोगोंके कामका, लोगोंके आविष्कारका, लोगोंके कौशलका, यथायोग्य उपयोग करे और अर्थशास्त्रमें वर्णन किये हुए श्रमविभागकी ठीक ठीक व्यवस्था करे। सार्वभौम-सत्तासे जिस कामका होना कठिन है उसी कामको व्यापारी बातकी-बातमें कर डालता है। अतुल सत्ता, असंख्य सैन्य और बड़ी भारी शक्तिके बलसे भी जिस कामको सार्वभौम राजा नहीं कर सकता, उस कामको एक व्यापारी अपनी हिम्मत, कल्पनाशक्ति और योजनाकी सहायतासे फौरन कर डालता है।

कोई शास्त्र, व्यापारशास्त्रके समान उपयोगी नहीं है और न कोई कला ही व्यापारकलाके समान महत्त्वकी है।

धंदा।

मनुष्य अपना समय, द्रव्य, लक्ष्य और मन जिस काममें लगाता है—उसे धंदा कहते हैं। मनुष्य मात्र जिस उद्योगको—जिन कामको —अपने पेटके लिए करते हैं उनका नाम धंदा है। पेट भरनेके लिए

न्हें श्रमका योग्य बदला देना व्यापारके हाथमें है । लोगोंकी ावश्यकताको पूर्ण करना, और रसिकोंके मनोरथ सिद्ध होनेकी व्यवस्था रना भी व्यापारका ही काम है। सार्वभौम-सत्ता, व्यापारीके काम और र्मके अधिकार इन तीनोंकी सत्ता जगतमें सब पर चलती हुई स्पष्ट ख पड़ती है।

व्यापारकी भींत सत्य और सारासार विचारकी नींव पर खड़ी होती है। व्यापारसे मतलब सच्चे व्यापारसे है, झूठेसे—सट्टे फाटकेसे—नहीं। व्यापारके दो भेद हैं–जुआ और सच्चा। जुएमें सौदा-सट्टा, फाटका, चौक-मूठ, वगैरह दाखिल हैं। सच्चा व्यापार–शुद्ध व्यापार न आता हो, तब ऐसे जुएके व्यापारकी ओर मनुष्यकी प्रवृत्ति होती है । जिस धंदेकी नींव सचाई, सारासारके विवेक और शुद्धता पर नहीं है, वह धंदा कैसा भी क्यों न हो–आज नहीं तो कभी-न-कभी, थोड़े ही दिनोंमें, अवश्य गिर जायगा और उसका गिर जाना ठीक भी है। बहुतसे मनुष्योंकी–और मुख्यकर जो व्यापारी नहीं हैं उनकी–ऐसी समझ हो गई है कि व्यापार बिना झूठके चल ही नहीं सकता । कोई कोई ऐसा समझते है कि व्यापारमें दो तीन बोटियाँ होनी ही चाहिए—व्यापारी दो तीन बोटियाँ कहे, इसमें कुछ बुराई नहीं । परन्तु ऐसा समझना भूल है। कानूनसे 'व्यापारी झूठ' को अन्याय मानकर दंड नहीं दिया जाता है, इसी बातसे यह नहीं कह सकते कि वह झूठ नहीं है। व्यापारका प्रत्येक व्यवहार—देना लेना—बिल्कुल सत्य होना चाहिए। जो साहूकार लेन-देनमें सचाई न रखता हो–जो अप्रा-माणिक व्यवहार रखता हो वह कभी स्थिर उन्नतिको नहीं पा सकता। प्रामाणिकता केवल नीतिकी—चारित्रकी—दृष्टिसे ही आवश्यक नहीं है, परन्तु व्यापारमें भी उसके अनुकूल चलना उत्तम–सर्वोत्तम पद्धति है।

माणिकता और साहूकारीमें बट्टा लगता हो। यह रीति बिल्कुल ठीक हीं है। व्यापारीको हमेशा प्रामाणिकता पर ही दृढ़ रहना चाहिए। प्रामाणिक व्यापारमें एक प्रकारका आनन्द है। यह एक अभ्रान्त सत्य है कि प्रामाणिकता शुद्ध आनन्दकी नदी है। जहाँ प्रामाणिकता है—जहाँ साहूकारी है, वहाँ पर सर्वत्र आनन्द ही आनन्द है।

अब न्यारे–न्यारे धंदोंके मुख्य मुख्य विभागोंके सम्बन्धमें एक दो मुख्य बातें कहकर हम इस विषयको पूरा करेंगे। धंदेका पहला और मुख्य विभाग **व्यापार-उद्यम** है। इस धंदेका मुख्य तत्त्व यह है कि सस्ताईमें खरीदना और मँहगाईमें बेचना। जो मनुष्य इस बातको अच्छी तरह समझ लेता है कि सस्ताईमें खरीदना और मँहगाईमें बेचना चाहिए, उसके विषयमें फिर यह सोचनेकी आवश्यकता नहीं रहती कि वह व्यापारी है या नहीं। जो मनुष्य ऐसे काम करता है वह व्यापारी—उद्यमी है ही। अलग-अलग मालके क्रय-विक्रयसे व्यापारियोंके नाम अलग अलग होते हैं। जैसे—कपड़ेके व्यापारी ' बजाज ', जवाहिरातके व्यापारी ' जौहरी ' चाँदी–सोने भूषण आदिके व्यापारी ' सर्राफ ' जड़ीबूटी आदिके व्यापारी ' पंसारी ' इत्रके व्यापारी ' गंधी ' इत्यादि। इस तरह अलग-अलग मालके नामसे व्यापारियोंके जुदे-जुदे नाम हैं; परन्तु उन सबका धंदा एक ही तत्त्व पर ठहरा हुआ है और उस तत्त्वका नाम है—' व्यापार '।

कल कारखानेवाले। कच्चा माल खरीद कर उसे कल्पना, कौशल और परिश्रमके द्वारा लोगोंके व्यवहारोपयोगी बनाना और उसे बेचना, कारखानेवालोंका धंदा है। कल-कारखानेवालोंका यह मुख्य कर्त्तव्य है कि वे बेचनेके लिए पक्का माल तैयार करें। अर्थात् कारखानेवाले कच्चे मालको खरीदें और उसे पक्का बनानेमें जो श्रम और

बुद्धि, होशियारी, चतुराई आदिको वेतन, फीस, कीमत आदिके ं बेचते हैं और धर्मगुरुको दक्षिणाके रूपमें उसके उपदेशको दी जाती है। विद्यावृत्तिके ये धंदे विशेष सम्मानके माने जाते न्तु इनमें जैसा चाहिए लाभ नहीं होता। न हो, परन्तु इनकी यकता बड़ी भारी है। ये लोग उन सब विद्याओंको बड़े परिश्रम खर्चसे खरीदते हैं और इस रूपमें बेचते हैं।

अन्यान्य फुटकर काम। दलाली, आढ़त वगैरह छोटे-बड़े अनेक र काम-धंदे हैं। उनका महत्त्व कुछ कम नहीं है, परन्तु इस सी पुस्तकमें उनका वर्णन करनेको जगह नहीं है।

पूँजी।

व्यापार करने अर्थात् मालको खरीदने, उसे बेचनेकी व्यवस्था करने, दूकान, गुमाश्ता, नौकर–चाकर आदि रखनेके लिए स रकमकी आवश्यकता पड़ती है—उसीका नाम पूँजी है। धंदा चला- लिए जिस रकमकी अत्यन्त आवश्यकता होती है, या जिस आव- क साधनके बिना धंदा चल ही नहीं सकता—उसीका नाम पूँजी है। ोंकि बिना धंदेका प्रारम्भ ही नहीं हो सकता। यह बात स्पष्ट है कि दनेके लिए रकम पास न हो तो खर्च किया ही कैसे जा सकता । खरीदना व्यापारका प्रारम्भिक काम है—मूलतत्त्व है। व्यापारमें रीदके बाद इतना ही मुख्य काम बाकी रह जाता है कि उस वस्तुको र करके उससे सारा खर्च और अमुक दर्जेका लाभ निकाला जाय। ाके खरीदनेके बाद उसपर जो जो इखराजात (खर्च) करते हैं उनमें ीका ब्याज, भंडार और दूकानका किराया, गुमाश्तों—नौकर-चाक-

उनके पिताका नाम था कृष्णदामोदर दास तथा मा
लक्ष्मीगौरी। उनके एक और बड़े भाई थे जि
वणसीधर या वंशीधर। अभी वंशीधरकी उम्र
नरसिंहरामकी ५ वर्षके लगभग थी कि उनके
देहान्त हो गया और उसके बाद नरसिंहरामका
बड़े भाई तथा दादीने किया। दादीका नाम था ज

नरसिंहराम बचपनसे गूँगे थे; प्रायः आठ व
उनका कण्ठ नहीं खुला। इस कारण लोग उन्हें
पुकारने लगे। इस बातसे उनकी दादी जयकुँवरि
होता था। वह बराबर इस चिन्तामें रहती थीं कि मेरे
कैसे खुले। परन्तु मूकको वाचाल कौन बनावे, पंगुको
की शक्ति कौन दे! जयकुँवरिको पूरा विश्वास था
केवल एक परमपिता परमेश्वरमें ही है; उनकी दया
पौत्र भी तत्काल वाणी प्राप्त कर सकता है। और
भी उसे विश्वास था कि उन दयामय जगन्नाथकी कृ
मनुष्योंको उनके प्रिय भक्तोंके द्वारा ही प्राप्त हुअ
अतएव स्वभावतः ही उसमें साधु-महात्माओंके प्र
आदरका भाव था। जब और जहाँ उसे कोई साधु-म
वह उनके दर्शन करती और यथाशक्ति श्रद्धापूर्व
करती।

रमें अपनी ही घरू पूँजी हो ऐसा कोई नियम नहीं है, परन्तु होना
 पूँजी। अन्ध-पङ्गु-न्यायसे व्यापार-कुशल और पूँजीवाले मनुष्यों-
ापसमें मिलकर काम करना चाहिए। इन्हें ऐसी व्यवस्था कर
चाहिए जिसमें दोनोंको लाभ हो। साख ठीक हो, तो ऐसा मान
बुरा नहीं है कि सारे संसारकी पूँजी मेरी ही है। 'साख' व्यापा-
ड़ी भारी पूँजी समझी जाती है। यदि हम पूँजीमें व्यापारी ज्ञान,
री चातुर्य, व्यापारी कला, साख, ग्राहकोंकी रुख परखनेकी कला
विश्वासपात्रताका भी समावेश कर दें तो अनुचित न होगा।
व्यापारमें मिलनेवाले मानका महत्त्व पूँजी पर ही है–दिवालियेका
सम्मान नहीं करता। पूँजीवालेको कितनी ही सुविधायें होती हैं।
 और खैंचातानी पूँजीवालेको विशेष दुःखदायी नहीं हो सकती।
श यह है कि सब नहीं तो भी बहुतसी व्यापारिक शक्तियोंका
र पूँजी ही है। व्यापारका बल अपने पासकी पूँजी पर ही है।
ारमें पूँजीकी बड़ी महिमा है।

सिक्का।

सर्वकी सम्मतिसे, सारी चीज़ोंका मोल ठहरानेके लिए, लेनदेनके
कामोंमें सुभीता होनेके निमित्त, जिस चीज़को प्रमाणके रूपमें
र लिया हो, उसीका नाम सिक्का है। आजकल हमारे देशमें रुपया
ता है। थोड़े दिनोंसे गिनी भी चली है; परन्तु इसका व्यवहार कम
गिनीकी कीमत १५) पन्द्रह रुपया ठहराई गई है। प्राचीन समयमें
रकी मुहर आदि सोनेके सिक्के चलते थे। अंग्रेज़ी गवर्नमेन्टके
लिखकर चाँदीका सिक्का चला। इस समय रुपया चाँदीका और गिनी

ामी तुलसीदासजीने ठीक ही कहा है कि—

ःदय नवनीत समाना । कहा कबिन पै कहइ न जाना ॥
ारिताप द्रवइ नवनीता । संत द्रवइ पर-ताप पुनीता ॥

ःमाओंका हृदय मक्खनके समान होता है । इतना ही नहीं,
केवल अपने ही तापसे द्रवित होता है और सत्पुरुष
पसे द्रवीभूत हो जाते हैं । फिर ये महात्मा तो दैवीशक्तिसे
ौर मानो उस वृद्धाकी मनोकामना पूरी करनेके ही लिये
ेरित होकर वहाँ आये थे । उन्होंने बालकको अपने
ा और उसे एक बार ध्यानपूर्वक देखकर कहा—'यह
भगवान्‌का बड़ा भारी भक्त होगा ।' इतना कहकर
ने कमण्डलसे जल लेकर मार्जन किया और बालकके
देकर कहा—'बचा कहो राधे कृष्ण राधे कृष्ण !'

महात्माकी कृपासे जन्मका गूँगा बालक 'राधे कृष्ण
कहने लगा । उपस्थित सभी मनुष्य आश्चर्यचकित हो
ाहात्माजीकी जय-जयकार पुकारने लगे ।

पौत्रके मुखसे भगवान्‌का नामोच्चार सुनकर वृद्धा
ो कितनी प्रसन्नता हुई होगी, इसे कौन बता सकता
महात्माजीको बार-बार प्रणाम किया और हाथ जोड़कर
ाके साथ प्रार्थना की—'महाराज ! आपकी ही कृपासे
अब बोलने लगा । मेरा बड़ा पौत्र राज्यमें थानेदारके
आप मेरे घरपर पधारनेकी कृपा करें और मुझे भी
सेवा करनेका सुअवसर प्रदान करें । आपकी चरणरजसे
पवित्र हो जायगा ।'

(व्य)ापारमें अपनी ही घरू पूँजी हो ऐसा कोई नियम नहीं है, परन्तु होना (चा)हिए पूँजी। अन्ध-पङ्गु-न्यायसे व्यापार-कुशल और पूँजीवाले मनुष्यों-(को) आपसमें मिलकर काम करना चाहिए। इन्हें ऐसी व्यवस्था कर(नी) चाहिए जिसमें दोनोंको लाभ हो। साख ठीक हो, तो ऐसा मा(न)ना बुरा नहीं है कि सारे संसारकी पूँजी मेरी ही है। 'साख' व्यापा(र)में बड़ी भारी पूँजी समझी जाती है। यदि हम पूँजीमें व्यापारी ज्ञान (व्य)ापारी चातुर्य, व्यापारी कला, साख, ग्राहकोंकी रुख परखनेकी कल (औ)र विश्वासपात्रताका भी समावेश कर दें तो अनुचित न होगा।

व्यापारमें मिलनेवाले मानका महत्त्व पूँजी पर ही है—दिवालियेक(ा) (क)ोई सम्मान नहीं करता। पूँजीवालेको कितनी ही सुविधायें होती हैं (स्)पर्धा और खेंचातानी पूँजीवालेको विशेष दुःखदायी नहीं हो सकती (स)ारांश यह है कि सब नहीं तो भी बहुतसी व्यापारिक शक्तियोंक(ा) (आ)धार पूँजी ही है। व्यापारका बल अपने पासकी पूँजी पर ही है (व्य)ापारमें पूँजीकी बड़ी महिमा है।

सिक्का।

सबकी सम्मतिसे, सारी चीज़ोंका मोल ठहरानेके लिए, लेनदेन व्यापारमें सुभीता होनेके निमित्त, जिस चीज़को प्रमाणके रूप(में) मान लिया हो, उसीका नाम सिक्का है। आजकल हमारे देशमें रुप(या) चलता है। थोड़े दिनोंसे गिन्नी भी चली है; परन्तु इसका व्यवहार क(म) है। गिन्नीकी कीमत १५) पन्द्रह रुपया ठहराई गई है। प्राचीन समय(में) अशरफी मुहर आदि सोनेके सिक्के चलते थे। ईस्टइंडिया कम्पनीके सम(य) सिर्फ चाँदीका सिक्का चला। इस समय रुपया चाँदीका और गि(न्नी)

माणिकगौरी स्वरूपवती और सुलक्षणा कन्
मनचाही योग्या पौत्रवधू पाकर उसे बड़ा सन्तो

वंशीधरने छोटे भाई नरसिंहरामके केवल
विवाहकी ही चिन्ता नहीं की, बल्कि उनकी शि
ध्यान दिया। उन्होंने नरसिंहरामको एक सं
पढ़नेके लिये बैठा दिया। परन्तु नरसिंहरामका म
में नहीं लगा। जबसे उन्हें महात्माजीके द्वारा इष्ट
तबसे उनका मन अधिकाधिक भगवान्‌की ओर अ
वह निरन्तर 'राधे-कृष्ण' नामका जप किया क
शाम मन्दिरोंमें जाकर देवी-देवताओंकी पूजा कर
और भजन-कीर्तन सुनते। श्रीशंकर भगवान्‌में
भक्ति थी। वह मन्दिरमें जाकर बड़ी श्रद्धा और प्रे
महेश्वरकी पूजा-अर्चना करते और प्रेमानन्दमें
भोलानाथके गुणगान करते। अगर कहीं पुराण
कथा होती तो वहाँ जाकर बड़े ध्यानसे भगवत्कथा
द्वारिका आने-जानेवाले साधु-महात्मा जब अपने ग
उनके दर्शन करते, यथासाध्य उनकी सेवा करते,
सुनते। अगर कोई भजन-कीर्तन करता तो स्वयं भ
बैठकर भजनके पद गाते या करताल बजाया करते
भावावेशमें आकर नृत्य करने लगता तो वह भ

ःदयां व्यतीत हो जाती हैं। अमेरिकाकी खानें निकलने पर जो चाँदीके भावमें फेरफार हुआ उसके बाद आजतक * कोई बड़ा र नहीं हुआ। इससे मुद्दती लेन-देन करना हो, तो सोने-चाँदीसे ठीक है। क्योंकि—चाँदी सोनेका जितना संग्रह संसारमें है साधारण कमीवेशी होने पर भी—उनके मोलमें विशेष फेरफार हो सकता। इस प्रकार चाँदी सोनेमें स्थिर रहनेका, सूक्ष्मविभाग कनेका, और समान कीमत निभा सकनेका गुण है। अतएव ये ा सिक्केकी योग्यता रखती हैं।

ःमारा रुपया। इस समय हमारा रुपया चाँदीका है। इसका १८० ग्रीन है। ग्रीन अँगरेजी वजन है। १५ ग्रीनका एक माशा १२ माशेका एक तोला होता है। १८० ग्रीनमें १६५ ग्रीन होती है और १५ ग्रीन हल्की धातु होती है। इस हल्की धातुके नेसे रुपयेमें कड़ाई और झनकार होनेका गुण आ जाता है। पहले ारी टकसालमें चाँदीके वजनके बराबर रुपये बना दिये जाते थे। ारी टकसालकी मजदूरी १५ ग्रीन तुच्छ धातुके मिलानेसे निकल ी थी। १५ ग्रीन हल्की धातुके मिलानेका रिवाज इस कारण पड़ा टकसालका श्रम निकल आवे, सिक्का कड़ा हो और वह बजने लगे।

चाँदी सोनेकी कीमत। २५—३० वर्ष पहले हमारे देशमें १०० चाँदीके लगभग ११५ रुपये बनते थे और एक तोला सोना १७-१८ में मिलता था। अब १०० तोला चाँदीके ७०—७२ रुपये होते

---

* अभी युरोपके महायुद्धसे उत्पन्न हुई परिस्थितियोंके कारण चाँदी सोनेके में अवश्य ही बहुत कुछ फेरफार हो गया है, जो कुछ समयमें ठीक हो गा। —प्रकाशक।

प्रायः सोलह वर्षकी अवस्था होते होते नरसिंहरामकी पत्नी माणिकगौरीके गर्भसे एक पुत्रीका जन्म हुआ। उसके दो वर्ष बाद फिर माणिकगौरीको एक पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई। पुत्रीका नाम कुँवरबाई और पुत्रका नाम शामलदास रक्खा गया। इस तरह नरसिंहरामको दो सन्तानोंका पिता होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

परन्तु उनका यह सौभाग्य दुरितगौरीकी आँखोंका काँटा बन गया। एक तो यों ही देवर-देवरानीको देखकर वह सदा जला करती थी; अब उनके परिवारकी वृद्धि उसके लिये और भी असह्य हो उठी। दोनों भक्त दम्पति यद्यपि सेवक-सेविकाकी तरह दिनरात घरके सब छोटे-बड़े काम किया करते थे, फिर भी दुरितगौरी यही समझती थी कि ये लोग मुफ्त ही घरमें बैठकर खा रहे हैं और दिन-पर-दिन इनका खर्च भी बढ़ता ही जाता है। अतएव वह अब नित्य उनके कामोंमें अकारण दोष निकालने लगी और झूठी-झूठी बातोंसे उनके विरुद्ध अपने पतिके कान भरने लगी। नाना प्रकारके कारण दिखाकर उन्हें सताने लगी। वंशीधर यद्यपि यह जानते थे कि मेरी पत्नी बड़ी दुष्टा है, द्वेषवश छोटे भाई और उसकी पत्नीपर झूठा दोषारोपण करती है, वे बेचारे तो एकदम निर्दोष और पवित्र हैं, फिर भी कभी-कभी पत्नीकी बातोंमें आकर यह छोटे भाईको कुछ भला-बुरा सुना दिया करते थे। इस तरह परिवारमें कुछ कलहका सूत्रपात हो गया।

वृद्धा जयकुँवरिको इस कलहका भावी कुपरिणाम स्पष्ट दिखायी दे रहा था। परन्तु घरमें मृत्युशय्यापर पड़ी एक वृद्धाकी

कितने ही मनुष्योंका यह भी अनुमान है कि एक दो करोड़ रुपये प्रति वर्ष टूट-फूट कर गलानेमें चले जाते होंगे।

रुपयेकी कृत्रिम कीमत। आजकल हम जिस रुपयेको काममें लाते हैं, वह कलदार रुपया कहा जाता है। यह रुपया कृत्रिम सिक्का है। असली कीमतकी जगह ठहराई हुई कीमत कुछ और ही हो, तब कृत्रिम नाम रक्खा जाता है। जो सच्चा नहीं वही कृत्रिम है। अच्छा सोचिए कि रामकुमारने ७०-७२ रुपयेकी चाँदी ली। उसे १०० भर चाँदी मिल गई। फिर इस १०० भर चाँदीके पूरे सौ रुपये बन गये। काँसेके मिश्रणसे सरकारी मजदूरी निकल आई। ऐसी सूरतमें ७०-७२ के १०० रुपये हो गये। लोगोंके लिए टकसाल बंद है, परन्तु सरकार ऐसा ही करती है। ७०-७२ से भी कमके मालकी कीमत १००रु० लेती है। अतएव हमारा रुपया असली नहीं बनावटी है।

भारतवर्षका व्यापार यूरोप, अमेरिका, आदि देशोंके साथ चल रहा है। इन देशोंके साथ लेन-देनका प्रसंग आना साधारण बात है। इंग्लैंडमें पौंड, शिलिंग, पैंस नामके सिक्के चलते हैं। अमेरिकामें डालर, सेंट, फ्रांस और जर्मनीमें फ्रेंक, चीनमें टेल, और जापानमें येन। प्रत्येक व्यापारको न्यारे-न्यारे देशोंके सिक्कोंका ज्ञान रखना चाहिए। हमारे सिक्कोंका उन उन देशोंके सिक्कोंका साथ क्या सम्बन्ध है जिन जिन देशोंके साथ हम व्यापार करते हैं, इस बातका जानना व्यापारीके लिए अत्यन्त आवश्यक है। हम आगेके कोष्टकमें यह बतलाते हैं कि कुछ देशोंके सिक्कोंके साथ पौंडकी कीमतका क्या सम्बन्ध है।

शिवका अनुग्रह

बड़े भाईकी आज्ञाके अनुसार नरसिंहराम बड़ी सावधानीसे पशुओंका पालन करते थे। अपनी ओरसे जानबूझकर काममें तनिक भी लापरवाही नहीं करते थे। इससे जब फुरसत मिलती थी तब भजन-पूजन करते थे, कथा-कीर्तनमें जाते थे अथवा साधुसंग किया करते थे। परन्तु भौजाई उनसे कभी सन्तुष्ट नहीं रहती थी; वह बराबर उन्हें तंग करनेका कोई-न-कोई मौका ढूँढा ही करती थी। नरसिंहराम उसके दुष्ट स्वभावके कारण उससे बहुत डरा करते थे। अपनी ओरसे बराबर ऐसी चेष्टा किया करते थे, जिसमें उसे शिकायत करनेका मौका ही न मिले। अधिकतर वह घर भी तभी आते जब बड़े भाई घरमें हों। जिस दिन

कीमत पौं० शि० पे०	चाँदीका सिक्का	ग्रेन वजन
०-१९-१०	पॅसो=१०० सेन्टेसीमोस	३८५-८
०-९-४	फ़्लोरीन- गुल्डन=१०० क्रुटगर	१९०-५
१-२-५॥	मील्रीस=१०० राइस	१९६-८
०-१८-९	पॅसो=१०० सेन्टेवो	३८५-८
,,	टेल=१० मेइस=१०० कॉडरीन	५८३-३
०-११-०	क्रोन=१०० अर	११५-७
१-०-३॥	पीयास्ट्र	२१-६
०-७-११॥।	मार्को=१०० पेनी	८०-०
,,	५=रोक पास	३८५-८
	१ मेक=१०० सेंटेसीमोस	७७-२
०-६-९४॥	राइक मार्कस	८५-७
१-०-०	क्राउन ५ शिलिंग, १शिलिंग=१२ पेनी	४३६-४,८७-३
०-९-४॥	रैक्सडालर=२॥ फ़्लोरीन	३८५-८
१-९-२॥	रुपया=१६ आने=६४ पैसे	१८०-०
२-०-१॥	येन=१०० सेन	४१६-०
२-०-५।	पॅसो=१०० सेन्टवो	४१७-८
०-१८-०॥।	पियास्ट्रे=४० पारा	१८-६
०-९-५	क्रान=२० शाही	७१-०
१-०-०	सोल=१० डीनर, १०० सेंट	३८५-८
२-४-४॥।	टेस्टन=१०० राइस	३१६-०
१-११-९	रुबल=१०० कॉपेक्स	३०८-६
१-०-७।	५ पसेटा पास	३८५-८
	पसेटा=१०० सेंटेसीमोस	७७-२
२-१-११	डालर=१०० सेंट, ट्रेडडालर	४१२-५,४२०-०

वह बहुओंसे उठे और एक ओर चल पड़े। वह कहाँ और किस लिये जा रहे हैं, इसका उन्हें कोई ज्ञान नहीं था। वह धीरे धीरे रास्तेसे बारह कोस दूर एक बीहड़ जंगलमें पहुँच गये। भूख-प्यास और थकान चलनेके कारण वह बहुत थक गये थे; आखिर विश्राम करनेके लिये वह एक वट-वृक्षकी छायामें बैठ गये। अब प्रायः सायंकाल हो रहा था। वह विचार करने लगे कि अब कहाँ जाना चाहिये। इस संसारमें दूसरा अपना है ही कौन! सर्वसंसारहारी परमकल्याणकारी भगवान् भोलानाथके अतिरिक्त और कोई शरण देनेवाला नहीं। प्रायः आठ वर्षोंसे रोज शिवजीकी पूजा करता आ रहा हूँ, प्रत्येक सोमवारको व्रत करता हूँ, सावन

सुधि न थी। वह तो अखिल भुवनपतिके ध्यानमें पड़े थे औ
उन्हींकी पुकार कर रहे थे।

धीरे-धीरे रात बीती; सूर्य भगवान्‌के आगमनसे पृथ्वीक
अन्धकार न मालूम कहाँ विलीन हो गया। फिर भी ब्राह्मण नरसिं
मेहता उसी स्थितिमें जमीनपर सिर टेके रुदन और विनती कर रहे थे
फिर दिन बीता और रात आयी और इस तरह दिनके बाद रा
और रातके बाद दिन आता और चला जाता। परन्तु वह उस
स्थितिमें पड़े रहे। वह अपनी श्रद्धा और सङ्कल्पसे लेशमात्र भ
विचलित नहीं हुए।

इस प्रकार प्रायः सात दिनकी उग्र तपस्यासे कैलासपतिक
आसन डोल गया और सातवें दिन आधीरातके बाद भगवान्
भोलानाथ भक्तके सामने साक्षात् प्रकट हुए। उन्हें देखते ह
भक्तराज उनके परमपावन चरणकमलोंपर यह कहते हुए लोट गये
कि 'मेरे भोलानाथ आओ! मेरे शम्भु आओ!'

भगवान् शङ्करने कहा—'बेटा! मैं तुम्हारी सात दिनकी
घोर तपश्चर्यासे अत्यन्त प्रसन्न हूँ; तुम मुझसे इच्छित वर
माँग लो।'

भक्तराजने नम्रतापूर्वक प्रार्थना की—'भगवन्! मुझे किसी
वरदानकी इच्छा नहीं है। फिर भी आपकी आज्ञा वर माँगनेकी है;
अतएव जो वस्तु आपको अत्यन्त प्रिय हो, वही वस्तु आप
वरदानमें देनेकी कृपा करें।'*

* तमने जे वल्लभ होय जे दुर्लभ, आपो रे प्रभुजी मुने दया रे आणी।

सामाजिक परिस्थितिका प्रभाव। हम पहले बतला चुके हैं कि पोष्टआफिसकी वी० पी० और मनीआर्डर आदिकी सरल पद्धतिकी ओर सबका ध्यान खिंच गया है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होना ही चाहिए कि उधारके लेन-देनकी साखमें कमी हो जाय। इसके सिवा अव्यवस्थित-साख होनेके कारणोंमें हमारी सामाजिक पद्धति भी एक कारण है। हमारे व्यापारियोंमें जाति-पाँतिका ख्याल भी बहुत देखनेमें आता है। असलमें व्यापारके कामोंमें जाति-पाँतिके सम्बन्धका विचार भी न उठना चाहिए। जाति-पाँतिका सम्बन्ध गौण है, मुख्य नहीं। व्यापारमें मुख्य दृष्टि लाभकी ओर होती है—उसमें अन्य किसी मार्गकी ओर दृष्टि जा ही नहीं सकती। सच्चे व्यापारके व्यवहारमें जाति-पाँति धर्म-पंथ वगैरह अपने आप दब जाते हैं। यहाँकी साख न बँधनेका एक यह भी कारण है कि हमारे यहाँ पर प्रायः मारवाड़ियोंके यहाँ मारवाड़ी, क्षत्रियोंके यहाँ क्षत्रिय, भाटियाओंके यहाँ भाटिये, पारसियोंके यहाँ पारसी, बोहरोंके यहाँ बोहरे, इस प्रकार जाति-पाँतिके विचारसे रक्खे हुए कारिंदे होते हैं। इस सामाजिक रीतिका साख पर क्या परिणाम होता है, सो किसी सूक्ष्मदर्शीसे छुपा नहीं है। किसी जाति और किसी मतमें अधिक धनवान होते हैं। इन धनवानोंसे जैसा चाहिए वैसा लाभ उस जाति या मतके मनुष्योंसे [illegible] और न उठा सके, यह क्या कुछ भारी आश्चर्यकी बात नहीं है?

अन्यान्य कारण। धनवान् लोग ज्ञानकी कदर नहीं करते। यह भी अव्यवस्थित साखका एक कारण है। हमारी वर्तमान परिस्थिति ऐसी है कि इसमें यह एक विलक्षण जान पड़ता है कि धनवान लोग बहुधा ज्ञानके शत्रु होते हैं। इस देशके लिए यह [illegible] होनेसे स्पष्ट होती है कि [illegible] और [illegible] कदर रहता है।

रासदर्शन

भगवान् शङ्कर वृषभपर सवार होकर भक्तराज नरसिंह
हिताके साथ बात-की-बातमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके परमधाम
ारिकामें पहुँच गये । उस दिव्य पुरीकी अलौकिक शोभा देखकर
क्तराज मुग्ध हो गये । उन्होंने उस धामके विषयमें कहा है कि
हाँकी भूमि सोनेकी है । वहाँके महलोंमें विद्रुममणिके स्तम्भ लगे
ए हैं और छत रत्नोंसे जड़े हुए हैं । वह दिव्यपुरी नित्य नये
ृंगारोंसे सुसज्जित रहती है । वहाँ सदा दिव्य प्रकाश फैला रहता
, जिसका तेज यहाँके प्रकाशसे करोड़गुना दीखता है । वहींके
काशसे सूर्य और चन्द्रको ज्योति प्राप्त होती है । वहाँके प्रकाशसे
चारे सूर्य-चन्द्रकी क्या तुलना की जाय, करोड़ों सूर्यके समान

सदाशिवने उत्तर दिया—'भगवन् ! यह जूनागढ़का एक
र ब्राह्मणकुलोत्पन्न वैष्णव भक्त है। इसने मेरा निरन्तर पूजन
र करके मुझे प्रसन्न किया और मैंने इसको वरदानमें अपनी निज
स्तु देनेका वचन दिया है। इसलिये आज मैं इस वैष्णव भक्तको
ापके पुनीत चरणकमलोंमें समर्पण करनेके लिये आया हूँ। आप
कृपासिन्धु हैं; सदा भक्तोंके अधीन रहते हैं। अतएव आशा है,
ि प्रार्थना आप अवश्य स्वीकार करेंगे।'

इतना सुनते ही भगवान् श्रीकृष्णने प्रसन्नतापूर्वक भक्तराज
रसिंहरामके सिरपर हाथ रखकर उन्हें स्वीकार कर लिया और
गवान् शंकर वहाँसे विदा हो गये। भक्तराज प्रेमसे गद्गद होकर
प्रभुके चरणोंमें लोट गये और अश्रुधारासे उन्होंने श्रीचरणोंको
ग़ार दिया। भगवान्ने भक्तराजको सम्बोधित करके कहा—'वत्स !
रे और महेश्वरके स्वरूपमें किञ्चिन्मात्र भी अन्तर नहीं है। मैं
करको अपना आराध्यदेव समझता हूँ और शंकर मुझको। इस
कार हम दोनोंके अभिन्न होनेके कारण तुमने जो शंकरकी पूजा
। है, वह वास्तवमें मेरी ही पूजा है।'

'प्रभो ! मैं किस योग्य हूँ ? मैं तो भगवान् सदाशिवकी
पासे 'श्रीकृष्णः शरणं मम' शब्द भर जान सका हूँ।' इस
कार नरसिंहरामने नम्रतापूर्वक निवेदन किया।

'वत्स ! जो मनुष्य मुझे अपना स्वामी समझता है, मैं उसका
स बन जाता हूँ। तुम्हारी नैष्ठिक भक्ति देखकर आज मैं अत्यन्त

और लोगोंको अधिक ब्याज पर देता है। यह लोगोंको इतने ब्या
पर उधार देता है कि उसमेंसे मेहनत, मकानका किराया वगै
निकाल कर स्वयं कुछ लाभ उठा सके। बैंकरका ध्यान खासकर
बातों पर अवश्य होना चाहिए। १ डिपाजिट रकमकी सहीसलाम
रखना और २ शेअरहोल्डरोंको काफी मुनाफा पहुँचाना। इस का
लिए उसे विचार रखना चाहिए कि कुछ नकदी सदा बनी रहे
कुछ रुपया ऐसे निर्भय स्थानोंमें रक्खा जावे कि जहाँसे तुरन्त
होसके। जैसे गवर्नमेंट सिक्यूरिटी, डिसकाउटस लोन वगैरह
बैंककी सफलताके लिए मूल आवश्यक बात यह है कि मूलधन
ज्यादा होना चाहिए। इतना ज्यादा कि प्रजाका उसपर विश्वास
जावे और बहुतसा रुपया जमा हो सके। बैंकका यह अत्यन्त आवश
कार्य है कि वह लोगोंका खूब रुपया जमा करे। इस समयमें औ
गिक हलचल और साहसिक व्यापार इतने ऊंचे पाये पर किये
हैं कि खानगी दूकानदार और थोड़ी पूँजीके बैंकोंको सफलता
नेका बहुत ही कम मौका मिलता है। इंग्लैंडमें बहुतसे बैंक मि
हैं—इसका भी यही कारण है।"

बहुतसे लोग अचरज करते हैं कि एक बैंक जब २०)
सैकड़ा ब्याज दे सकता है तब दूसरा १५) रुपये सैकड़ा भी
दे सकता, इसका कारण क्या है? इसका कारण बैंकके मू
और जमा हुई रकमकी कमी-बेशी है। कल्पना कीजिए कि भ
गेजमें एक बैंक खोला गया। उसका मूलधन है ४ करोड़ और
हुआ रुपया है तीस करोड़। इसी तरह दूसरा बैंक इसमनुसमें
जिसका मूलधन ८ करोड़ और जमा तीस करोड़ रुपया है।
सूरतमें पहला बैंक दूसरे बैंकसे दूना ब्याज दे सकेगा।

उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं था । अतएव वह एक भावसे तक रासदर्शन करते रहे, उनका चित्त एक क्षणके लिये विचलित न हुआ ।

अन्तमें रासलीला समाप्त होनेपर स्वयं भगवान्‌की दृष्टि हरामके जलते हुए हाथपर पड़ी । तुरन्त उन्होंने आगे बढ़- हाथकी आगको बुझा दिया और प्रेमसे हाथ फेरकर उसकी पीड़ा दूर कर दी । भक्तराजकी इस तन्मयताको देखकर णी आदि महादेवियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ । माता रुक्मिणीने सन्न होकर अपना हार ही उतारकर भक्तराजको पहना दिया। नूने भी भक्तराजकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और 'भक्त नरसिंहको मान जानो' ऐसा कहकर उन्हें अत्यन्त सम्मान प्रदान किया ।

इस प्रकार आनन्दोत्सव, भगवद्दर्शन और भगवत्सेवामें नरसिंह- प्रायः एक मास बीत गया; परन्तु उन्हें यह समय एक से अधिक नहीं मालूम हुआ । एक दिन वह बैठे-बैठे नूकी चरणसेवा कर रहे थे कि अचानक उनका ध्यान अपने यपर गया और वह सोचने लगे—'अहा ! मैं धन्य हूँ जो साक्षात् लक्ष्मी तथा देव-मुनियोंको भी दुर्लभ भगवान्‌की चरण- करनेका सुअवसर प्राप्त हुआ है ।····परन्तु ऐसा सौभाग्य शर्नी भौजाईकी ही कृपासे प्राप्त हुआ है; अतएव मुझे उन्हींका कार मानना चाहिये ।'

भक्तराज इसी विचारमें डूबे हुए थे कि एकाएक उन्हें भगवान्-

व्यापारका आधार है। इतना ही नहीं वह प्रजाके विश्वासका भी मू
आधार है। बैंकरको एक ही धंदा न जानना चाहिए, किन्तु देशके सा
काम धंदोंका उसे अनुभव होना चाहिए। इतना ही क्यों उसे देश
विदेशके सारे व्यापारी आन्दोलनोंसे वाकफियत, राजकीय विपयोंक
ज्ञान, नये नये आविष्कारोंकी खबर और कानूनका ज्ञान होना चाहिए
नये कानूनोंका व्यापार पर क्या प्रभाव पड़ेगा, यह भी उसके लक्ष्य
बाहर न होना चाहिए। इसके सिवा संसारकी हलचल तथा मनुष्य
स्वभावकी बारीकियोंको जाननेमें भी उसे कुशल होना चाहिए।"

महाजनी या बैंकिंगमें हुंडी-पुरजेका खास तौर पर काम पड़ता है
व्यापारियोंको एक जगहसे दूसरी जगह पर सुरक्षित रीतिसे सिक्का—नाण
भेजनेका काम पड़ता है। इस व्यवहारमें सुगमता होनेके लिए हुंड
पुरजेकी आवश्यकता होती है। उदाहरणके तौर पर हम इंदोर औ
बम्बईका दृष्टान्त लेते हैं। इंदोरके व्यापारियोंने बम्बईसे और बम्बई
व्यापारियोंने इंदोरसे पाँच लाखका माल खरीदा। इंदोरवालोंको बम
ईमें रुपये देने हैं और बम्बईवालोंको इंदोरमें। ऐसी सूरतमें के
किसीको नक्द रुपया न भेजेंगे। बम्बईके व्यापारी बम्बईमें विनोदीरा
बालचन्दजीके यहाँ रुपया जमा करा कर इंदोरकी हुंडी करावेंगे औ
उस हुंडीके द्वारा इंदोरकी विनोदीराम बालचन्दजीकी दूकानसे मा
वालोंको दाम मिल जावेंगे। इसी तरह इंदोरके व्यापारी नक्द रुप
बम्बई न भेजकर इंदोरके सेठ तिलोकचन्द हुकुमचन्दकी हुंडीके द्वा
बम्बईके मालदारोंको चुकता देंगे। इस तरह जो कोई साहूकारी
धंदा करता है, जिसकी जगह जगह दूकानें हैं, उनकी हुंडियोंके द्वा
देन-लेनकी भुगतान की जा सकती है। ऐसी हुंडी-पुरजोंको बैंक

नेत्रोंसे कहा—'प्रभो ! आपके चरणोंकी धूलि प्राप्त
क्या कोई ऋण शेष रहता है ? नाथ ! ऐसी आज्ञा
पुनः मुझे संसारमें न फँसाइये । मैं संसारसे ग्रसित हो
चरणोंमें आया हूँ । आपके चरणोंसे विमुख होकर मैं पु
व्यावहारिक कार्योंमें नहीं फँसूँगा ।'

भगवान्ने कहा—'भक्तराज ! सत्य है, मेरी शरण
पर जीव तमाम ऋणानुबन्धसे मुक्त हो जाता है। तुम भी
कोई ऋण न समझो—पर लोकसंग्रहके लिये तो ऋणोंसे
ही चाहिये । तुम जाओ । सब काम मेरी पूजा सम
साथ ही मेरे विग्रहकी भी अर्चना करो । तुम्हारे-जैसे
भक्तके लिये यद्यपि मूर्ति-पूजा अनिवार्य नहीं, फिर
ध्यान-पूजा करनेके लिये अपनी एक प्रतिमा देता हूँ। इ
की पूजा-अर्चा करने और ध्यान करनेसे तुम्हारी भक्ति
दृढ़ हो जायगी। साथ ही यह करताल भी मैं देत
करतालके द्वारा जब तुम मेरा कीर्तन करोगे तभी मैं
उपस्थित हो जाऊँगा और तुम्हारे गृहस्थाश्रमके सभी का
कर दूँगा । मेरा यह प्रण है कि—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्

आसानीसे पलटा जा सकता है, अतएव सारे आवश्यक कागजोंमें अंकोंसे लिखकर अक्षरोंमें भी रुपये लिखे जाते हैं। हुंडीमें उस रकमकी आधी संख्या लिख कर उसके दूने पूरे रुपये लिखनेकी रीति है। इसके सिवाय हुंडीके अन्तमें या उसकी पीठ पर दोहरा सतरोंका चौखूँटा कोष्टक बनाकर उसमें रकमका अंक और उसकी बगलमें अक्षरोंसे 'इतनेक दूने पूरे रुपये इतने' लिखनेकी भी परिपाटी है। कहीं पर 'इतनेके चौगुने पूरे रुपये इतने' लिखनेकी भी रीति है। नामजोग हुंडीमें जिसके रुपये रक्खे हों उसका और जिसे रुपये दिलवाने हों उसका भी नाम लिखा जाता है और शाहजोग हुंडीमें 'शाहजोग' या 'शाह व्यापारी जोग' लिखा जाता है। हुंडीके रुपये और कोई न ले जासके, रुपयेकी जोखम माथे न आपड़े, इसलिए किसी प्रतिष्ठित व्यक्तिकी जामिन लेकर कि यह वही व्यक्ति है, हुंडीके रुपये सिकारे जाते हैं। इसी हेतुसे हुंडीमें लिखा जाता है कि 'नाम धामकी चौकसी करके रुपये देना।' अमुक हुंडी लिखीगई है इस बातकी खातरी होनेके लिए जिसपर हुंडी लिखी होती है उसे हुंडी लिखनेवाला वालावाला पत्र भेजता है।

जिस पत्रमें 'नाम जोग' हुंडी लिखी हो उसमें रुपये लेनेवालेके निशान आदि लिखे होते हैं और 'शाहजोग' हो तो किसकी ओरकी आदि लिखा जाता है। हुंडीमें इस बातका उल्लेख करनेके लिए, 'निशानी पत्रमें लिखेंगे' आदि लिखा जाता है। गुमाश्तेने हुंडी लिखी होती है तो अन्तमें उसके हस्ताक्षर रहते हैं और सेठ हुंडीके सिरे पर या बगलमें अपनी सही कर लिखते हैं कि 'इस हुंडीको सिकार कर रुपये देना,' इससे हुंडी सिकारनेवालेकी खातरी होजाती है।

हुंडी खो जाय या फट-कट जाय तो उसके रुपये मिलनेके लिए हुंडी लिख देनेवाला धनी 'पैंठ' लिख देता है, पैंठके खराब होने पर

अनन्याश्रय

प्रातःकालका समय था; भगवान् भुवनभास्करने अपने
उषःकालीन प्रकाशसे दसों दिशाओंको सुवर्णमयी बना रक्खा था।
इसी समय भक्तप्रवर नरसिंहराम जूनागढ़के समीप गरुड़ासनसे
उतर पड़े। उन्होंने एक समीपवर्ती तालाबपर स्नानादि नित्य
क्रियाओंसे छुट्टी पा कुछ देर भगवद्-भजन किया। उसके बाद
उन्होंने सोचा—'मैं किसके पास चलूँ? भाई-भौजाईने तो उस
दिन घरसे निकाल दिया था; वे लोग क्यों मेरा स्वागत करेंगे?
परन्तु उनके सिवा अपना दूसरा है भी कौन? पहले तो उन्हींके
पास चलना चाहिये, चाहे वे मेरा अपमान ही क्यों न करें।'

उनके पास भगवान्की दी हुई प्रतिमा, करताल, मोरपुच्छका

हैं। अतः ये मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। इन वस्
और इस वेषका त्याग मुझसे जीते-जी नहीं हो सकता। अत
संसारकी दृष्टिसे यह मेरा पागलपन ही है। दुनियाका चस्म
न्यारा है; दुनियाको सयाने मनुष्य दीवाने-से प्रतीत होते हैं,
इतिहासप्रसिद्ध बात है। क्या प्रह्लादको हिरण्यकशिपुने पाग
नहीं समझा था? क्या विभीषणको रावणने मूर्ख नहीं समझा था?
जहाँ ऐसी बात है वहाँ तो दीवाना बनकर रहना ही श्रेयस्कर
है। आशा है, इस ढिठाईके लिये आप क्षमा करेंगे।' नरसिंह-
रामने निर्भीकतापूर्वक उत्तर दिया।

'बेवकूफ! क्यों व्यर्थ मुझे समझानेकी चेष्टा कर रहा है!
भगवान् कहाँ तेरे लिये रास्ता देख रहे थे कि तू उनसे मिल आया!
तेरे-जैसे अक्लमंदोंको यदि वह दर्शन देने लगें तब तो संसार ही
सूना हो जाय, वैकुण्ठमें फिर घुसनेको जगह भी न मिले। अरे,
कोई धूर्त मिल गया होगा धूर्त—

जैसेको तैसा मिला इसमें कौन नवाई।
मूरखको मूरख मिला आओ मूरख भाई॥

—नरसिंह! अब इस बेवकूफीको छोड़, नहीं तो बहुत पछताना
गा। नात-गोत, सगा-सम्बन्धी कोई साथ न देगा। लड़कीका
ह तो हो गया, परन्तु लड़केका विवाह होना मुश्किल हो
ा और विवाह नहीं होनेसे हमारा कुल भी नीचा माना
।' वंशीधरने पुनः समझानेकी चेष्टा की।

ाईजी! मुझे तो बस

खको अच्छी तरह नहीं बतला सके, जितना कि वास्तवमें उसका व्यापारमें महत्त्व है।

नामा एक स्वतन्त्र शास्त्र है। नामेकी उत्तम जानकारी एक विद्या । नामेका ज्ञान एक उपयोगी कला है। प्रत्येक व्यवसायीको उसकी ावश्यकता है। इसके बिना किसीका व्यापार-व्यवसाय चल नहीं कता। नामाके लिए जो बहियें रखनी पड़ती हैं उनमें नित्यबही और ाता मुख्य हैं। अपने यहाँ आई हुई अर्थात् जमा की हुई रकम धनीके ामसे बाईं ओर जमा की जाती है। इसी तरह दी हुई रकम दाहिनी ोर लिखी जाती है। प्रतिदिनका नक्द या उधारसे किया हुआ लेन-न नित्य-बहीमें लिखा जाता है। सायंकालको जब लेन-देन बंद कर या जाता है तब जमा खर्चका जोड़ लगा और रोशन बाकी निका-कर मिती बंद कर दी जाती है। चतुर व्यापारी प्रतिदिन रोशन बचत) मिलाये बिना नहीं रहता।

नित्य-बहीकी रकम नाम-वार और जिनस-वार एक ही जगह मिल ावे, इसके लिए एक दूसरी बही रक्खी जाती है। इसमें धनी-वार खाते ोते हैं। इसमें नित्य-रोकड़बहीका पाना नंबर और मिती लिखकर नीवार लेन-देनकी विगत एक ही जगह लिखी रहती है। इसे खाता कहते हैं। जमा खर्चका मुख्य कागज नित्यबही--रोकड़ है और उसका वर्गीकरण (इकट्ठा किया हुआ) तथा वर्गीकरणकी अनुक्र-मणिका खाता-बही है। खाता-बहीके देखनेसे तुरंत इस बातका पता लगाया जा सकता है कि सारा लेन-देन कितना है और हानि-लाभ क्या है, इत्यादि। चतुर व्यापारी जैसे रोज रोशन मिला लेते हैं, वैसे ही प्रतिवर्ष अपने हानिलाभका भी हिसाब कर लिया करते हैं। बरसों तक हिसाब-किताबको न देखनेवाले व्यापारीको

फेर यह अन्न-जल तेरा कमाया हुआ तो है नहीं, तू अभी अलग ो जा । तू तो बड़ा भगत होकर आया है, तुझे किस बातकी चिन्ता है?' दुरितगौरीने कहा ।

दुरितगौरी शीघ्र-से-शीघ्र अलग हो उ ानेपर ही तुली हुई है, यह बात नरसिंहरामसे छिपी न रही। उन्होंने देखा कि अब अपनी ओरसे साथ रहनेपर जोर देना व्यर्थ है । अब तो भगवान्के ारोसे इस घरसे तुरत निकल जाना ही मेरे लिये उचित है । अतएव वह अपनी धर्मपत्नी, षोडशवर्षीया पुत्री तथा पुत्रके साथ अलग होनेके लिये तैयार हो गये । उन्होंने वंशीधरसे कहा—भाई ! मैं आपलोगोंकी आज्ञा शिरोधार्य कर अभी अलग हो रहा । आप पूज्य हैं, आशीर्वाद दीजिये कि मैं अपना धर्म पालन करनेमें समर्थ हो सकूँ । साथ ही मेरी प्रार्थना है कि आप मनमें कोई कुभाव न रक्खें, छोटे भाईकी तरह ही मुझपर सदा स्नेह रखें, इसीसे मैं कृतार्थ हो जाऊँगा । बस, विदा लेता हूँ ।' इतना कहकर उन्होंने बड़े भाईको प्रणाम किया ।

उधर माणिकगौरीने भी दुरितगौरीको प्रणाम करते हुए कहा—'जेठानीजी ! आपको प्रणाम करती हूँ और आपकी शुभाशीष चाहती हूँ ।'

वंशीधर अभी चुप ही थे कि दुरितगौरी बोल उठी—'बस, अब अधिक ज्ञान न बघार । मैंने तो आज ही तेरा स्नान कर दिया; अब तू चाहे भीख माँग या राज्यासनपर बैठ, हमें इससे कोई मतलब नहीं। अपनी यह सीख किसी और व माँगनेवाले

र हम ग्राहकका कुछ विश्लेषण किया चाहते हैं। ग्राहक वह है जो अपने उपयोगके लिए माल खरीदे और जो शख्स अपने उपयोगके लिए नहीं, बेचकर लाभ उठानेके लिए, माल खरीदे वह व्यवसायी है।

ग्राहक-व्यवसायी और दूकानदार-आढ़तियोंका परस्परमें बहुत ही निकटका सम्बन्ध है। पहले ग्राहकी बाँधना—उसे कायम रखना यह व्यापारका मुख्य काम है। इस कामके लिए आपसमें विश्वास बँध जाना चाहिए। विश्वास बँधनेका सम्पूर्ण आधार परस्परके बर्ताव और शुद्ध व्यवहार पर निर्भर है। व्यापारीको चाहिए कि वह ग्राहकोंके साथ अपना व्यवहार सदा विश्वासपूर्ण रक्खे। नामा साफ और शुद्ध रखना चाहिए। दूकानदार या आढ़तियाके लिए इतना ही काफी नहीं है कि वह नामेको ही ठीक रक्खे, किन्तु उसके लिए यह भी अवश्य है कि वह व्यवसायीको अच्छे-से-अच्छा माल सस्ते भावसे खरीद देनेकी सावधानी रक्खे। ग्राहकको किसी तरहका नुकसान न होने पावे, इस बातकी खबरदारी रखना एक आवश्यक कर्तव्य है। नामा ठीक रखना, ग्राहकको सस्ता और अच्छा माल मिले, उसे हानि न हो और लाभ रहे, इत्यादि बातोंकी व्यवस्था रखना और इसी तरहकी इच्छा रखना व्यापारीका काम है। व्यापारीको सफाई, नियमितता, स्वच्छ व्यवहार, स्पष्टवादिता और सरलता पर खास तौर पर ध्यान रखना चाहिए।

व्यापारमें आढ़तके धंदेके सिवाय एक दलाली धंदा भी है। खरीदनेवाले और बेचनेवालोंके सौदेको करा देनेवालेको दलाल कहते हैं। आढ़त भी एक प्रकारकी दलाली है, परन्तु है वह दलालीकी अपेक्षा मानपूर्ण। आढ़तके धंदेवालोंको दूकान भी रखनी पड़ती है और कामके प्रमाणमें पूँजी रोकनी पड़ती है। दलालीमें इतनी कोई

फिर यह अन्न-जल तेरा कमाया हुआ तो है नहीं, तू अभी अलग हो जा। तू तो बड़ा भगत होकर आया है, तुझे किस बातकी चिन्ता है!' दुरितगौरीने कहा।

दुरितगौरी शीघ्र-से-शीघ्र अलग हो जानेपर ही तुली हुई है यह बात नरसिंहरामसे छिपी न रही। उन्होंने देखा कि अब अपनी ओरसे साथ रहनेपर जोर देना व्यर्थ है। अब तो भगवान्‌के भरोसे इस घरसे तुरत निकल जाना ही मेरे लिये उचित है। अतएव वह अपनी धर्मपत्नी, षोडशवर्षीया पुत्री तथा पुत्रके साथ अलग होनेके लिये तैयार हो गये। उन्होंने वंशीधरसे कहा—'भाई! मैं आपलोगोंकी आज्ञा शिरोधार्य कर अभी अलग हो रहा हूँ। आप पूज्य हैं, आशीर्वाद दीजिये कि मैं अपना धर्म पालन करनेमें समर्थ हो सकूँ। साथ ही मेरी प्रार्थना है कि आप मनमें कोई कुभाव न रक्खें, छोटे भाईकी तरह ही मुझपर सदा स्नेह रखें, इसीसे मैं कृतार्थ हो जाऊँगा। बस, विदा लेता हूँ।' इतना कहकर उन्होंने बड़े भाईको प्रणाम किया।

उधर माणिकगौरीने भी दुरितगौरीको प्रणाम करते हुए कहा—"जेठानीजी! आपको प्रणाम करती हूँ और आपकी शुभाशीष चाहती हूँ।'

वंशीधर अभी चुप ही थे कि दुरितगौरी बोल उठी—'बस, अब अधिक ज्ञान न बघार। मैंने तो आज ही तेरा स्नान कर लिया; अब तू चाहे भीख माँग या राज्यासनपर बैठ, हमें इससे कोई मतलब नहीं। अपनी यह सीख किसी भीख माँगनेवाले

विज्ञापन।

व्यापारकी जितनी प्रसिद्धि होगी उतना ही उसे लाभ होगा। हमारे यहाँ अमुक अमुक माल मिलता है और हमारी दूकान अमुक स्थान पर है इत्यादि बातोंकी जितनी ज्यादा प्रसिद्धि होगी उतना ही अधिक लाभ होगा। प्रसिद्धि पर ही ग्राहकोंकी बढ़ती और मालकी खपती होती है। इस बातमें किसी प्रकारका संदेह नहीं है कि व्यापारकी सर्वत्र जितनी ज्यादा प्रसिद्धि की जावेगी–उतना ही अधिक लाभ होगा। प्रसिद्धि करना व्यापारमें पहला और आवश्यक काम है। व्यापारीको इस बातका ज्ञान होना ही चाहिए कि वह अपनी प्रसिद्धिको अच्छीसे अच्छी तरकीबें सोचकर काममें लासके। मुखसंचारक कंपनी मथुराका सुधासिन्धु, डा० एस. के. वर्मनका अर्ककपूर, डोंगरेका बालामृत, ठाकुरदत्तशर्मा लाहोरकी अमृतधारा, मणिशंकर गोविन्दजी-की आतङ्कनिग्रह गोलियाँ और इसी तरह अन्यान्य व्यापारियोंकी खूब-बिक्री होनेका कारण क्या है? यही कि उन्होंने विज्ञाप-नोंकी धूम मचा रक्खी है–अपनी प्रसिद्धि खूब फैलाई है। अपनी, अपने मालकी और अपनी दूकानकी योग्य प्रसिद्धि करना यह एक प्रकारकी कठिन कला है। अपनी ओर लोगोंके चित्तका आकर्षण करना, उन्हें अपना ग्राहक बनाना और उन पर अपनी साख बिठलाना ये तीनों काम विज्ञापनोंके द्वारा सिद्ध करने पड़ते हैं। इस लिए व्यापारीको विज्ञापन-कलाका ज्ञान होना चाहिए। जो व्यापा-री प्रसिद्ध न हुआ हो, जिस व्यापारीके मालकी बहुतेरे मनुष्योंको खबर न हो और जिस व्यापारीकी दूकानके पतेकी लोगोंको खबर न हो, उस व्यापारीको विशेष लाभ नहीं हो सकता। इस वास्ते समझदार

'प्राणेश ! धर्मशालामें तो मुसाफिर और साधु-फ
करते हैं; गृहस्थलोग धर्मशालामें रहना अच्छा नहीं समझ
हमारी नागर-जाति अत्यन्त द्वेष करनेवाली है; इस व
विचार कर लेना चाहिये।' माणिकबाईने लौकिक क
स्मृति दिला दी।

'प्रिये! यह संसार भी एक प्रकारकी धर्मशाला ही
प्रकार इस छोटी-सी धर्मशालामें मुसाफिरोंका आना-जान
जारी रहता है, उसी प्रकार संसाररूपी विशाल धर्मशा
मुसाफिररूपी अनेक जीवोंका आवागमन लगा रहता है
लेकर रंकतक सभी मनुष्योंका यही हाल है। इसमें विच
की कोई बात नहीं।' नरसिंहरामने तात्त्विक ढंगसे सम

'जैसी आपकी इच्छा' कहकर पतिव्रता माणिक
हो गयी।

भक्तराज सकुटुम्ब गाँवसे बाहर धर्मशालामें जाकर ठ
उनके परिवारकी एकमात्र सम्पत्ति थी—भगवान्‌की दी हुई
करताल और मुकुट। सायंकाल हो जानेपर भक्तराज भ
प्रतिमाके सामने बैठकर प्रेमपूर्वक भजन करने लगे
नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बह रहे थे।

प्रायः आधीराततक भजन निरन्तर चलता रहा
बाद भजन बंदकर नरसिंहराम शयनकी तैयारी कर रहे

वचन सर्वथा सत्य है। कुछ क्षण कृतज्ञता
स्मरण करके भगवान्की प्रेरणासे ही नरसिंह
रहनेके लिये एक मन्दिर, जीवनरक्षाके
साधुसेवाके लिये आवश्यक सामग्री, इसके
चाहिये !'

'अच्छा, प्रातःकाल होते ही आप
व्यवस्था हो जायगी। फिर तो कोई चिन्ता न
प्रश्न किया।

'अभी तो कोई चिन्ता नहीं रहेगी।
कोई नयी चिन्ता उत्पन्न हो जाय तो उसे
आप जानें।' भक्तराजने अपनी ओरसे नि

भक्तराजकी निश्चिन्तता तथा 'जलपद
देखकर अक्रूरजी दंग रह गये और उनका
हँसते हुए उनकी वाक्चातुरीकी प्रशंसा क

दूसरे दिन प्रातःकाल नरसिंहराम तो
निवृत्त होकर भजन-पूजनमें प्रवृत्त हुए और
शहरमें जाकर उनका सारा प्रबन्ध करने
अत्यन्त सुन्दर मकान उनके रहनेके लिये म
वस्त्र तथा अन्यान्य गृहस्थीकी सारी वस्तुएँ

माणिकबाईने बड़े सन्तोष और आनन्दके साथ कहा- 'प्राणेश ! आपका वचन तो अक्षरशः सत्य उतरा । आप की भक्तिके प्रभावसे अपने-आप सारी व्यवस्था हो गयी ।'

नरसिंहरामने कहा—'प्रिये ! इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं । मनुष्यकी रक्षा मनुष्यके द्वारा कभी नहीं हो सकती, जगत्-भरका पोषक स्वयं परमपिता परमेश्वर ही है । जो मनुष्य उसका अनन्य आश्रय ग्रहण कर लेता है, शोक-चिन्ता उसके पास नहीं फटकती । फिर मुझे तो भगवान् श्रीकृष्णने वचन दिया कि 'अनन्यभावसे मेरा चिन्तन करता हुआ जो मनुष्य मेरी उपासना करता है, उस नित्ययुक्त मनुष्यका योगक्षेम मैं वहन करता हूँ।' प्रिये ! हमारा कार्य तो बस इतना ही है कि हम अनन्याश्रय होकर उसका भजन-पूजन करते रहें ।'

... तीन वर्षकी जगह छः महीनेमें ही गयी। यहाँतक नौबत आ गयी कि घरकी एक-एक चीज तो भगवान्‌का भोग लगाया जाता और साधु-संतोंको सन्तुष्ट की चेष्टा की जाती। परन्तु यह अवस्था भी कबतक चलती। दिनोंमें ही जो इनी-गिनी एक परिवारके कामके योग्य चीजें थीं, प्रायः समाप्त हो चलीं। अब परिवारका काम बड़े संकोचसे च लगा। परन्तु इतना होनेपर भी भक्तराज एकदम निश्चिन्त थे समयमें भी यह चिन्ता उनके शान्त मनको स्पर्श नहीं करती थ कि कल क्या होगा। बस, जैसे चलता था वैसे चलता था और वह अपने नित्यके भजन-कीर्तनमें मस्त थे।

उन्हीं दिनों एक नयी आफत उनके सिर आ गयी। ऊनासे श्रीरंगधर मेहताके कुल-पुरोहित कुँवरबाईको विदा करा ले जानेके लिये आ पहुँचे। उस दिन प्रातःकालसे ही भक्तराज ... थानपर भजन करनेके लिये गये हुए थे।

पुरोहितजीने आकर प्रश्न किया—'मेहताजी कह ?' 'कहीं बाहर गये हैं; पधारिये महाराज!' रसोई माणिकबाईने उत्तर दिया।

पुरोहितजीने भीतर आकर अपना नाम, ठाम तथा आने विस्तारपूर्वक सुनाया। माणिकबाईने आसन बिछा दिया अं न आदर-सत्कार किया। पुरोहितजी आसनपर बैठ गये माणिकबाई पुत्रीकी विदाई ...

लगे—'स्वामी ! मेरा-मेरा करती हुई व इन
हो ! इन पुत्र-पुत्रीके हम तो नामके माता-
पिता तो हम सबके वह श्रीपति भगवान्
करनेमें समर्थ हैं। फिर हम व्यर्थ क्यों चिन
स्वयं ही चिन्ता होगी और उनकी जैसी रुचि
समयपर अपने ही प्रबन्ध कर देंगे।'

'नाथ ! कल तो पुत्रीको भेजना होग
देनेके लिये एक वस्त्रनका ठिकाना नहीं।
हैं जो ऐन मौकेपर कल आकर उन्हें सार
जिसका नाम-ठाम नहीं, उसका विश्वास ही
माणिकबाईकी आँखोंसे अश्रुधारा बहने लगी

'प्रिये ! 'मैं' और 'मेरा' ये दो शब्द
जालरूप हैं, दुःखके कारण हैं। संत-वैराग
और राजासे लेकर रंकतक प्रायः संसारके स
से बँधकर चौरासीका चक्कर भोग रहे हैं।
का त्याग ही संसारका सच्चा त्याग है। सुनो

(प्रभात)

'समरने श्रीहरि मेल ममता परी, जोने वि

'गुरु महाराज ! इतनी जल्दी करनेसे काम कैसे अभीतक तो पुत्रीके लिये एक नया वस्त्र भी तैयार नहीं कि आपको दो-चार दिन ठहरना पड़ेगा।' मानिकबाईने च दे दिया।

'आपको जो-जो वस्तुएँ तैयार करनी हों, उन्हें आज कर लीजिये। कल तो कृपा करके मुझे विदा कर ही दीजिये पुरोहितजीने आग्रह प्रकट किया।

'महाराज ! हमें कोई वस्तु तैयार करनेकी चिन्ता नहीं; जो कुछ करना है, उसे मेरे भगवान् करेंगे। परन्तु जबतक मेरे कु मर्यादाके अनुसार दहेजका प्रबन्ध परमात्माकी ओरसे नहीं ह जाता तबतक तो आपको ठहरना ही होगा।' भक्तराजने हँसते- हँसते कहा।

भक्तराजकी यह बात पुरोहितजीकी समझमें बिल्कुल नहीं आयी। उन्होंने आश्चर्यके साथ कहा—'मेहताजी ! आप क्या कहना चाहते हैं, कुछ समझमें नहीं आता। आपके परमात्मा तक आकर आपकी पुत्रीके दहेजके लिये सामग्री पहुँचा गे ? ऐसी बातें तो न कहीं सुनी गयीं, न देखी गयीं। मालूम क्यों आप इस तरहकी अनहोनी बात मुँहसे निकाल रहे हैं"

'पुरोहित महाराज ! घबड़ाइये नहीं, भगवान्‌की माया तो घटनापटीयसी' कहलाती ही है ... नहीं।

अन्य वस्तुकी सत्ता ही उनकी दृष्टिमें नहीं रहती, फिर
ओर ध्यान ही कैसे जाय ?

भक्तराजके पुत्र शामलदासकी अवस्था धीरे-धीरे बारह
की हो गयी । माणिकबाईने देखा कि अब लड़का भी विवाहयो
होनेको आया और हमारे घरमें खानेका भी ठिकाना नहीं है
गरीबके घर अपनी पुत्री कौन देना चाहेगा ? और कुल-परिवारके
लोग भी प्रसन्न नहीं जो इस काममें सहायता करेंगे, वे तो यही
कारण दिखाकर उलटे बाधक हो सकते हैं । ऐसी स्थितिमें तो
पुत्रका विवाह होना कठिन ही प्रतीत होता है । एक दिन उ
अपनी चिन्ता पतिपर प्रकट की । पतिने कहा—'प्रिये !
व्यर्थ दुःख क्यों करती हो ? चिन्ता छोड़ो, केवल श्रीकृष्णक
ध्यान करो, सदा मनमें उन्हींको रक्खो । वह दयालु प्रभु अपने
आप हमारे सारे कार्य यथासमय करते रहेंगे; वह स्वयं हमसे
अधिक हमारे लिये चिन्तित होंगे ।'

उन्हीं दिनों गुजरातके वड़नगर नामक शहरके रहनेवाले
मदन मेहताकी पुत्रीके लिये एक सुयोग्य वरकी खोज चल
थी । मदन मेहता एक प्रतिष्ठित नागर गृहस्थ थे । वह स्वयं
राज्यके दीवानके पदपर थे और आठ-दस लाखकी सम्पत्ति
उनके पास थी । उनकी रूप-शीलसे युक्त पुत्री जुठीबाई * विवाह
योग्य हो गयी थी । उन्होंने कई जगह सुयोग्य वरकी खोज
परन्तु कहीं उनका मन नहीं जमा ...
को एकत्र कर उन्होंने ...

प्रिय मित्र श्रीसारंगधरजी !

सप्रेम प्रणाम।

आपके पास अपने कुलपुरोहित श्रीदीक्षितजीको भेज
हूँ। मेरी पुत्री जूठीबाईकी अवस्था अब विवाहयोग्य हो गयी
कृपाकर अपने यहाँ किसी कुलीन घरमें एक रूपशीलयुक्त सुयो
वर देखकर सम्बन्ध करा दीजियेगा। आपको अपना अभिन्न मि
जानकर यह कष्ट दे रहा हूँ।

आपका—मदन मेहता।

सारंगधर पत्र पढ़कर उठ खड़ा हुआ और दीक्षितजी
लेकर अपने घर आया। दीक्षितजीका उचित सत्कार कर उस
अपने मित्र मदनरायजीका कुशल-समाचार पूछा।

बात-की-बातमें यह समाचार सारी नागर-जातिमें फैल
के वड़नगरसे एक पुरोहितजी वरकी खोजमें आये हैं। च
ोरसे एक-न-एक बहाना लेकर लोग सारंगधरके घरपर एक
ने लगे। जो आता, वही पहले अनजानकी तरह दीक्षितजीको
इशारा करते हुए प्रश्न करता—'कहिये सारंगधरजी! आप
रय कौन हैं?' सारंगधर सबको यही उत्तर देता—'आप
ारके मेरे मित्र मदनरायजीके पुरोहित हैं। मेरे मित्रकी
न्याके लिये एक सुयोग्य वरको खोज...

दीक्षितजीसे आग्रह करनेका भरपूर प्रयत्न किया । दर
बैठे हुए कुछ गाँवके लोगोंने भी उनकी प्रशंसाका पुल बाँध
जब अनिरुद्धरायका पुत्र गहने-कपड़े सजकर सामने आ
दीक्षितजीने उससे भी प्रश्न किया—'तुम्हारा नाम क्या है?' उ
तुतली आवाजमें उत्तर दिया—'वि···वि···वि···याधर···
···राय ।' दीक्षितजीने फिर आगे कुछ न पूछ सारंगधरको उठने
के लिये कहा ।

इस प्रकार कई दिनोंतक घूम-फिरकर अपने हित-मित्र और
जातिके प्रायः सैकड़ों लड़कोंको सारंगधरने दिखाया । परन्तु
दीक्षितजोकी दृष्टिमें एक भी लड़का नहीं चढ़ा । किसीको बधिर,
किसीको तुतला, किसीको मूर्ख, किसीको कुरूप इत्यादि एक-न-
एक कारण दिखाकर उन्होंने सबको छाँट दिया । स्वयं दीक्षितजी
भी अयोग्य लड़कोंको देखते-देखते तंग आ गये । उन्हें सन्देह हो
गया कि शायद सारंगधर योग्य वर दिखानेकी अपेक्षा अपने सगे-
सम्बन्धी और मित्रोंके लड़के दिखानेकी अधिक चिन्ता रखता है ।
अब उनका मन सारंगधरपर विश्वास करनेकी गवाही नहीं देता
था । परन्तु मदन मेहताने जब सारंगधरको अपना मित्र समझकर
उसके पास उन्हें भेजा था, तब वह उसके विरुद्ध कैसे चल सकते
हैं ? अतएव उन्होंने सारंगधरसे कहा—'मेहताजी ! केवल कुलीन
और सुन्दर लड़का मुझे नहीं चाहिये, लड़का गुणवान् भी होना
चाहिये । आपने बहुत-से लड़के दिखाये, परन्तु सुयोग्य वर एक
भी दिखायी नहीं पड़ा ।'

ठीक और यहाँ तो किसी दूसरे स्थानके लिये प्रयत्न हो जायेगा।
ग, बताइये ?' इस तरह कहते हुए दीक्षितजीने विदा ली।

'अच्छा महाराज ! नमस्कार !' कहकर मदनजीने
प्रणाम, मुसकाना और हाथ जोड़कर विदा किया।

दीक्षितजी घूमते नरसिंहरामके घर पहुँचे। उस दिन वहाँ
न-उत्सव था। भक्तराज हरिकीर्तनमें संलग्न थे। उनकी
तन्मयता और तल्लीनता देखकर दीक्षितजी दंग रह गये। उन्होंने
मनमें विचार किया, 'भगवान्‌की लीला भी विचित्र है। इसे
नागरोंमें केवल यही एक घर ऐसा मिला है जहाँ आते ही चित्त
को शान्ति प्राप्त हुई है। यह घर जैसा पवित्र है वैसा ही यदि
वर भी मिल जाय तो मदन मेहताकी पुत्रीका भाग्य ही खुल जाय।'

दीक्षितजीको यथोचित सत्कार करके बैठा दिया गया।
थोड़े समयमें हरिकीर्तन समाप्त हुआ। दीक्षितजीने भक्तराजके पास
जाकर अभिवादन किया। भक्तराजने उन्हें भगवान्‌का प्रसाद देकर
प्रश्न किया—'आपका शुभनिवास कहाँ है ?'

'भक्तराज ! मैं वडनगरके दीवान मदनरायजीकी पुत्रीका
सम्बन्ध करनेके लिये यहाँ कुछ दिनोंसे आया हुआ हूँ। सौभाग्य-
से आज आपके दर्शन करनेका भी सुअवसर प्राप्त हुआ है। सुना
है, आपके भी एक विवाहयोग्य पुत्र है। कृपया उसे मुझे
दिखाइये।' दीक्षितजीने नम्रतापूर्वक कहा।

'महोदय ! इस शहरमें सात सौ नागर गृहस्थोंके घर हैं और
प्रायः सभी धनाढ्य और कुलीन हैं। आप तो जानते ही हैं कि—

'जैसी भगवान्‌की इच्छा' कहकर मदनरायने अपनी निश्चिन्तता प्रकट की। इतनेमें ही नरसिंहरामजी भी वहाँ पहुँच गये। पुत्रका सम्बन्ध हो जानेकी बात जानकर उनका हृदय [illegible] पुलकित हुआ, इसे कौन कह सकता है? इस निर्धनतामें भी अपने [illegible] सौभाग्यकी बात सोचकर आनन्दके मारे उनके नेत्र गीले हो गये।

दूसरे दिन दीक्षितजी यजमानसे विदा लेकर चल दिये। उन्होंने वडनगर पहुँचकर अपने यजमानके सामने नरसिंहरामकी भक्ति, सज्जनता, सचाई आदिका खूब बखान किया। शामलदासके रूप, शील और सुलक्षणका वर्णन करते हुए कुँवरिके सौभाग्यके लिये उसे बधाई दी। मदनरायका सारा परिवार उनके वर्णनको सुनकर बड़ा आनन्दित हुआ। नरसिंहरामकी निर्धनतापर मदनरायने बड़े उत्साहके साथ कहा कि—'जब कुल-शीलादिमें वह सब तरहसे योग्य हैं तो फिर धनकी कोई चिन्ता नहीं। भगवान्‌ने भरपूर दिया है; सात-आठ लाखकी सम्पत्तिमेंसे एकाध लाख दे देनेसे उनका कष्ट दूर हो जायगा।'

ठहरानेके लिये स्थान बनाया जा रहा था; बारातके
भोजनादिका प्रबन्ध किया जा रहा था; गाने-बजानेके बड़े
रहे थे; राज्यके बड़े-बड़े श्रीमन्तों, नगरके सेठों
सम्बन्धियोंको निमन्त्रण दिया जा रहा था । इकलौती
विवाह खूब धूमधामके साथ करनेके विचारसे सारा प्रबन्ध
तीके साथ हो रहा था ।

ही बीच जूनागढ़का ब्राह्मण वड़नगर पहुँचा और उसने
ताको ले जाकर पत्र दे दिया । पत्रमें लिखा था—

दलरायजी !

आपकी इकलौती पुत्रीका सम्बन्ध जोड़नेके लिये आपके
दीक्षितजी जूनागढ़ आये थे । आपको मालूम होगा कि
हमारे सात सौ घर हैं; परन्तु उन्होंने किसी योग्य घरमें
करके अत्यन्त निर्धन और जातिच्युत नरसिंहरामके पुत्र-
सम्बन्ध जोड़ दिया है । हम आपको नम्रतापूर्वक सूचित
कि वह घर बिल्कुल आपके योग्य नहीं । घर-घर भीख
तथा जोगी-वैरागियोंका संग करनेवाला मनुष्य भला
दीवानका कैसे सम्बन्धी हो सकता है ? अतः आप उस
तोड़कर किसी सुयोग्य वरकी खोज करें, जिसमें आपकी
बट्टा न लगे । विशेषु किं बहुना ।

आपका—

सारंगधर

जातिमण्डलकी ओरसे ।

ड़नगरसे ब्राह्मणने आकर पत्र नरसिंहरामके हाथमें दिया
कर वह श्रीकृष्णमन्दिरमें गये और करताल लेकर भगवत्कीर्त
गे। भक्तकी पुकार सुनकर भगवान् प्रकट हो गये
अमृतमयी वाणीसे कहा—'वत्स! तुझे मेरा आवाह
ना पड़ा?'

क्तराज गद्गद होकर प्रभुके चरणोंपर लोट गये। फि
उन्होंने प्रभुके हाथोंमें वह पत्र दे दिया। पत्र पढ़क
ने कहा—'वत्स! किसी तरहकी चिन्ता मत करो। मैं
हूँ, यह सब जूनागढ़के ब्राह्मणोंकी करतूत है। मैं
पने कुल-परिवारसहित नागरोंका वेष धारणकर सारी
के साथ बारातमें उपस्थित होऊँगा और तुम्हारा कार्य सम्पन्न
।' इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। धन्य
लता!

रसिंहरामने वड़नगरके ब्राह्मणका उचित सत्कार करके
र दी और आप निश्चिन्त होकर भजन-पूजन करने लगे।
प्रतिपदाके दिन वह सिरपर चन्दन लगा, हाथमें करताल
ाँच साधुओंके साथ पुत्रका विवाह करनेके लिये जूनागढ़-
पड़े। इस विचित्र बारातको देखकर माणिकबाईने पतिसे
ामिन्! यही सामग्री लेकर आप एक दीवानके घर
कहीं अपमानित होकर वड़नगरसे पुत्रका विवाह करने
यों वापस न आना पड़े।' मेहताजीने सरल ढंगसे उत्तर
'प्रिये! तुम बहुत अधीर हो जाती हो। जब मैंने मान

गोपियोंकी भावनाके अनुसार स्वरूप धारणकर उनकी इच्छापूर्ति नहीं की थी ? बालक भक्त प्रह्लादको जिस समय विषपान कराया गया, उस समय क्या विषस्वरूप बनकर मैंने उसकी रक्षा नहीं की थी ? पुत्र ! अपने भक्तके लिये कोई भी काम करना मेरे लिये दुष्कर नहीं है ।' भगवान्‌ने नरसिंहरामका समाधान किया ।

वहाँसे बारात बड़ी सजधजके साथ रवाना हुई । हाथी, घोड़े, रथ, पैदल—चतुरंगिणी बारात थी । अनेकों प्रकारके बाजे बज रहे थे । कितनी ही गाड़ियोंपर डेरे, तंबू और सजावटके सामान लदे हुए थे । जब स्वयं द्वारिकाधीश भगवान्‌की ही बारात थी, तब उसमें कमी किस बातकी हो सकती थी ? बारात निश्चित समयपर बड़नगर पहुँच गयी और एक स्थानपर आकर ठहर गयी । बारातका ठाट देखकर सब लोग यही कहते थे कि मानो कोई चक्रवर्ती राजा अपने पुत्रका विवाह करने आये हैं ।

इधर मदन मेहताने भी अपनी हैसियतके अनुसार विवाहकी खूब तैयारी कर रक्खी थी । दूर-दूरके सगे-सम्बन्धी और मित्र श्रीमन्तलोग ब्याहमें सम्मिलित होनेके लिये आये थे । बारातका आगमन सुनकर वह सब लोगोंके साथ स्वागत करनेके लिये उस स्थानपर आये । नारायणी बारातकी अपूर्व शोभा देखकर वह चकित रह गये । उन्होंने सोचा—'ऐसी बारात तो कोई राजा भी नहीं ला सकता था । जो मनुष्य मेरे यहाँ ब्याह करने आया है, वह कोई साधारण आदमी नहीं हो

और मेहताजीका भी पूजन किया। पूजन-सत्कार होनेके बाद मदन मेहताने अपनी पुत्रीके सिर हाथ रखा और कहा—'भगवान्! आपके साथ सम्बन्ध होनेके कारण आज मैं धन्य हो गया।'

'मेहताजी! यह सब प्रभुकी कृपाका ही परिणाम है।' भगवान‌ने उत्तर दिया।

मदन मेहताने भगवान्के साथ नरसिंहरामका यथाशक्ति आतिथ्य-सत्कार किया तथा विधिपूर्वक वर-पूजन करके अपनी कन्याको दान कर दिया। बड़े समारोहके साथ विवाह-कार्य सम्पन्न हुआ। मदन मेहताने वस्त्र, अलंकार, रत्नादि बहुमूल्य वस्तुएँ दहेजमें देकर पुत्रीको विदा कर दिया।

इस प्रकार प्रणतपाल भगवान् भक्त-पुत्र शामळदासका विवाह-कार्य सम्पन्न करके सरुक्मिणी अन्तर्हित हो गये।

पतित रहते हैं; बल्कि सांसारिक दुःखको वे भगवत्कृपा मानकर बड़े उल्लासके साथ वरण करते हैं। क्योंकि उनकी दृष्टिमें दुःख उनके भगवत्-प्रेमको और भी प्रगाढ़ बनाता है। यही कारण है कि कुन्तीने भगवान् श्रीकृष्णसे यह वरदान माँगा था—'हे भगवन्! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे सदा दुःख ही दीजिये।' फिर परम भागवत नरसिंहरामको ही दुःख क्यों होता! उन्होंने तो पहले ही सब कुछ भगवान्का समझ रक्खा था और केवल भगवान्को ही अपना बना लिया था। भगवान् श्रीकृष्णका भजन निरन्तर करते-करते उनका हृदय भगवत्मय हो गया था, वह मानो भगवद्भक्तिरूप नौकाद्वारा दुस्तर शोकसागरको पार कर चुके थे। इकलौते पुत्रकी मृत्यु तथा नवविवाहिता पुत्रवधूके वैधव्य-जैसे महान् सांसारिक दुःखसे वह लेशमात्र भी व्यथित न हुए, बल्कि पुत्रशोकाकुला माणिकबाईको सान्त्वना देनेके लिये उन्होंने उस अवसरपर यह पद भी गा दिया—

'भलुं थयुं भांगी जंजाळ,
सुखे भजीशुं श्रीगोपाळ।'
(भला हुआ छूटा जंजाल,
सुख भजेंगे श्रीगोपाल।)

पतिकी ऐसी दृढ़ता देखकर और उनके उपदेशसे प्रभावित होकर माणिकबाईका भी शोक दूर हो गया। दोनों पति-पत्नी भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे इस घटनाको एकदम भुलाकर आनन्दपूर्वक भगवद्भजन और साधुसेवामें पूर्ववत् जीवन बिताने लगे।

तरहका काम-काज रहेगा। तुम भी कल प्रातःकाल सात बजे ही आ जाना, वैरागियोंके अखाड़ेमें एक दिन मत जाना।'

नरसिंहरामने बड़े शान्त चित्तसे उत्तर दिया—'भाई! साधुसंत तो मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। अतः मैं तो साधुओंकी सेवा करके ही आऊँगा। मेरी स्त्री भी भगवान्‌का नैवेद्य तैयार करनेके पश्चात् कल ही आयेगी।'

'ओहो! भीख माँग-माँगकर साधुसेवा करनेका दम्भ रखनेवालेका इतना मिजाज!.........यदि तू इतनी लापरवाही रखता है तो फिर पिताजीका श्राद्ध भी क्यों नहीं कर लेता! 'पास न एक कौड़ी, और बाजारमें दौड़ी'—बस यही तेरा हाल है।' वंशीधर क्रोधसे तमतमाते हुए बोले।

'भाई! जब आपकी आज्ञा है तो मैं अवश्य पिताजीका श्राद्ध करूँगा और अपनी शक्तिके अनुसार दो-चार ब्राह्मणोंको भोजन करा दूँगा। श्राद्धमें सगे-सम्बन्धी तथा जाति-भाइयोंको भोजन कराना पारस्परिक व्यवहार है और उचित भी है; परन्तु हम लोग जो 'श्रद्धया दीयते अनेनेति श्राद्धम्'—इस शास्त्र-वाक्यको भुलाकर केवल नात-जातके लोगोंको स्वादिष्ट भोजन करानेमें ही अपने पितरोंका उद्धार समझते हैं, यह ठीक नहीं।' अपनी स्वाभाविक शान्तिके साथ नरसिंहरामने निवेदन किया।

इतना सुनते ही मानो वंशीधरके जलेपर नमक पड़ गया। क्रोधके मारे उनके नेत्र लाल हो गये और चुपचाप अपने घर आकर उन्होंने सारा हाल दुरितगौरीको सुना दिया। दुरितगौरीका

'साध्वी ! तू बार-बार ऐसी घृणित अ
हुए वृथा क्यों भाषण करती है ! आज भी तूं
व्यर्थ दोषारोपण कर ही डाला । भगवान् बड़े
हैं । उनके यहाँ पाप-पुण्यका न्याययुक्त बदला
मेरा दुर्भाग्य है कि मेरी अर्द्धांगिनी होकर भी
अभाव है । प्रिये ! मैं बार-बार कह चुका हूँ व
हूँ कि जो सच्चा सोना होता है, उसे ही घर्षण
तथा ताड़न आदि दुःखोंको सहते हुए कसौ
है । स्वर्णकारको भी यही उचित है कि वह व
परीक्षा न कर खरे सोनेकी ही परीक्षा करे । व
कसौटीपर हैं और ऐसी कसौटी ही मनुष्यत्वकी
मेरा दृढ़ विश्वास है कि उस परमपिताके दरबार
अन्याय नहीं होता ।' नरसिंहरामने खूब जोरद
का समाधान किया ।

'नाथ ! क्षमा करें; अब मेरी आँखें खुल
इससे भी अधिक कोई कष्ट आ पड़े तो मैं विचलि
उस कृपालु जगन्नाथपर पूर्ण विश्वास रखूँगी । मे
दो मासेका एक सोनेका कर्णभूषण है; इसे
सामग्री ले आइये और कलका काम चलाइये ।'
माणिकबाईने आभूषण नरसिंहरामके हाथपर र

'मेहताजी ! वंशीधरके घरपर जातिभोजनका निमन्त्रण होनेपर भी आपको दुःख माननेका कोई कारण नहीं। आपके घर चलकर हम सबलोग भगवान्‌को समर्पित किया हुआ नैवेद्य अवश्य ग्रहण करेंगे और इस तरह अपने देहको पवित्र करेंगे। आपकी कामना भी पूर्ण हो जायगी।' प्रसन्नरायने बक-भक्ति प्रकट करते हुए कहा।

किसीकी कीर्तिको कलंकित करनेके लिये दुर्जन अत्यन्त नम्र बन जाते हैं। प्रसन्नरायके इस भावको वहाँ उपस्थित सभी नागरोंने संकेतद्वारा प्रोत्साहित किया। उन्होंने सोचा, आज यदि सारी जातिका निमन्त्रण नरसिंहराम दे दे तो बड़ा अच्छा हो। देखें, कहाँसे यह इतने आदमियोंके भोजनका प्रबन्ध करता है।

किन्तु शुद्ध हृदय मनुष्यको तो सर्वत्र अपनी तरह शुद्धता ही दिखायी देती है। नरसिंहरामने मनमें विचार किया कि जब जातिके सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति भगवत्प्रसादकी अपेक्षा रखते हैं तब उनका अनादर करना उचित नहीं। फिर, एक बार जातिगंगाके आगमनसे मेरा घर भी पवित्र हो जायगा। इस प्रकारका भाव मनमें आते ही उन्होंने भगवान्‌का स्मरण किया और सोचा कि निमन्त्रण तो सारी जातिका दे ही दूँ, फिर परमात्माकी जो इच्छा होगी, वह होगा ही। बस, उन्होंने पुरोहितजीसे कहा—'पुरोहितजी ! आप सात सौ घरके सभी जातिभाइयोंको भोजन-का निमन्त्रण दे आइये। कल सायंकाल श्रीद्वारिकाधीशकी जय-

महात्माको कहाँ मालूम था कि समस्त जातिके
आवश्यक घृत इस छोटे-से पात्रमें आवेगा या नहीं
भजनकी ही धुनमें घरसे निकल पड़े ।

उन्हें देखते ही एक व्यापारीने प्रश्न
मेहताजी कहाँ चले ? कौन-सी चीज लेनेके लिये
साधु-मंडली तो नहीं आयी है ?'

'नहीं, सेठजी ! साधुमंडली नहीं आयी है
श्राद्धमें ब्राह्मणभोजन करानेके लिये दस मन घीक
है । यदि अच्छा घृत हो तो दिखाइये ।' भक्तराजने

'घृतका मूल्य लेकर आये हैं या पीछे चु
हैं ।' व्यापारीने पूछा ।

'भाई ! घृतका मूल्य अभी नहीं ले आया हूँ
अवश्य चुका दूँगा ।' नरसिंहरामने कहा ।

सेठने विचार किया कि यह निर्धन आदमी
लगभग तीन सौ रुपया कहाँ पावेगा ? कोई आमद
तो है नहीं । इतना अधिक उधार लगाना ठीक
कहा—'भक्तराज ! मेरे पास उतना घृत नहीं
लाचार हूँ ।'

नरसिंहराम आगे बढ़े । एक भगवद्भक्त व्या

श्राद्ध तथा ब्राह्मणभोजनके लिये आवश्यक सारी वस्तुएँ मे
घरपर पहुँचा दीजिये, मैं भी स्वयं नरसिंहरामका रूप
यहाँ शीघ्र ही आ रहा हूँ ।

नरसिंहरामको बाजार गये बहुत देर हो गयी थी ।
बाई सोचने लगी, क्या हुआ जो घी लेकर नहीं लौटे !
नहीं मिला ! अगर नहीं मिला तो फिर श्राद्ध और ब्राह्म
कैसे होगा ! क्या आज ब्राह्मण दरवाजेपरसे भूखे लौट
ओह ! कितना बड़ा पाप लगेगा ! वह बड़े लापरवाह हैं;
होता है किसी साधु-मंडलीमें जाकर बैठ गये और क
भूल ही गये; नहीं तो वापस तो आ ही गये होते ।
कैसे आज लाज रहेगी !

माणिकबाई इसी चिन्तामें बेचैन थी कि अ
भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार सेठ-वेषधारी अक्रूरजी सारा
छकड़ोंपर लादे लेकर आ पहुँचे । माणिकबाईकी चिन्ता
दूर हुई और वह बड़ी प्रसन्नताके साथ सारी सामग्री
स्थान रखवाने लगी । थोड़े समयमें ही स्वयं भगवान् भी न
रामके रूपमें घी लेकर आ पहुँचे । इस गुप्त रहस्यको कोई
न सका । माणिकबाईने मेहतारूपधारी भगवान्‌से प्रश्न कि
'इतनी देर कहाँ लगा दी ! मैं बड़ी चिन्तामें पड़ गयी
इतना सब सामान कहाँसे प्राप्त हुआ ?'

'सती ! आज पिताजीके श्राद्धके उपलक्षमें सारी

'क्यों पुरोहितजी ! क्या मैं आपव
आपकी दृष्टिमें तो धनवान् और निर्धन सभी
होने चाहिये ?' नरसिंहरूपधारी भगवान्ने य

'सभी यजमान समान कैसे हो सकते
जिन्दगीमें आज निमन्त्रण दिया है और यं
निमन्त्रण आया करता है । फिर आज भी तू
कितनी देगा ? बराबरी दिखाने चला है !' पुरे
भरे स्वरमें कहा ।

'अच्छा महाराज ! तब आजसे इस्तीफा द
रामका मैं आजसे कुलपुरोहित नहीं रहा । मैं
खोज लूँगा ।' भगवान्ने कहा ।

पुरोहितजीने तावमें आकर इस्तीफा लिख
भगवान् वहाँसे चले आये । रास्तेमें एक मूर्ख त्रि
पड़े । भगवान्ने कहा, 'महाराज ! आप मेरे
करानेके लिये पधारेंगे ?'

ब्राह्मणने नम्रतापूर्वक प्रार्थना की—'नरसिं
भी पढ़ा-लिखा नहीं हूँ; केवल खेती करके अ
परिवारका उदर-पोषण करता हूँ । अतः मैं आपवे

मैं तो प्रातःकाल ही जो घृत लेनेके लिये गय
हूँ। रास्तेमें एक भक्त मिल गये, उन्हींके यहाँ
मैं अभी आ रहा हूँ। इसीसे मुझे देर भी हो
विस्मयके साथ कहा।

'तो फिर विधिवत् श्राद्ध करके हजारं
किसने कराया।' मैंने तो स्पष्ट देखा कि
कर रहे हैं। आप मुझसे मजाक क्यों कर रहे
माणिकबाईने कहा।

'प्रिये! मैं मजाक नहीं कर रहा हूँ; मैं
हूँ। अवश्य ही यह सब मेरे प्रियतम श्रीकृष्ण
स्वरूप बनाकर स्वयं मनमोहनने ही मेरे प
भगवान्‌की कितनी महती दया है!' इतना कह
पतीके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बरसने लगे। वे अत
भगवद्भजन करने लगे।

विरुद्ध है। परन्तु शास्त्रमें देखा जाय तो
प्राचीन ऋषि-मुनियोंने एकादशी आदि व्रतोंः
हमारा बड़ा भारी उपकार किया है। यदि ह
भी दें तो वैज्ञानिक दृष्टिसे भी इन सब व्रतं
यह सभी स्वीकार करेंगे कि दसों इन्द्रियं
करना मनुष्यके लिये अत्यन्त आवश्यक है।

परन्तु माणिकबाईका शरीर आज कुछ
साधारण ज्वर हो आया था। फिर भी वह शः
न कर पतिके साथ भजन करनेमें ही लीन थं
पुण्ये कृष्णे भक्तिः प्रजायते' इस शास्त्रवाक्यकं
अपना मनुष्यजन्म सफल बना रही थी। दोनों
इतने मग्न हो रहे थे मानो वे इस मायिक
भजनानन्दके अनुपम जगत्में विहार कर रहे।

भजन करते-करते सायंकाल हो गया।
करके स्नान करनेके लिये दामोदरकुण्ड*
समाप्त कर उन्होंने समीपवर्ती उद्यानसे फूल औ
और उसके बाद वह घरकी ओर चल पड़े।
कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे' की ध्वनि
रही थी।

'भैया ! इस कामके लिये लि
भगवान्‌का भजन करता है; मेरा कथ
कहा है—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगि
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र

जिस स्थानपर भगवान्‌का भजन
वैकुण्ठधाम ही है । जो मनुष्य भगवान्
जातिका होनेपर भी देवस्वरूप है । औ
के प्रभावको जानकर भी भगवान्से वि
कुलमें उत्पन्न होनेपर भी भगवद्भक्तके स
है । भगवान्‌के भजन करने तथा शरण
चाण्डालपर्यन्त सबको समान अधिकार
तो ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डा
ही सच्चे ज्ञानी बतलाये गये हैं । सामाजि
हैं और वह रहना भी चाहिये, इसीसे भग
बात कही है । सब बातोंमें समान बर्ताव
तो सभीको अधिकार है । अतः तुम अपने
के समीप गोबरसे जमीनको लीप-पोतकर
मैं तुम्हारी इच्छानुसार आज रातको तुम्हारे

शक्ति रखता था । फिर इन्होंने नवविवाहित युवक पु
तथा प्रौढ़ अवस्थामें सहधर्मिणीका देहान्त—दोनों वि
एक साथ आना संसारमें दुःखकी पराकाष्ठा ही कही
परन्तु फिर भी वीतराग भक्तप्रवर नरसिंह मेहता प्र
और शान्त थे । यह वास्तवमें इस जन्म-मरणमय संस
ही कहाँ थे जो यहाँके दुःख-शोक उन्हें स्पर्श करने
सदा किसी दूसरे ही दिव्यलोकमें निवास करते थे, जहाँ
एकरस आनन्द प्रवाहित होता रहता है ।

पत्नीका वियोग देखकर भक्तराजने विचार कि
इस संसारमें जिस वस्तुके साथ रहनेके कारण मैं संसारी
था, आज उस वस्तु—स्त्रीको भी परमात्माने मुझसे
कर दिया; भगवान्‌ने यह अनुग्रह ही किया । भजन
सहायता देनेवाली संगिनीका वियोग हो गया, परन्तु
इससे भजन और भी बढ़े । फिर मनुष्यको उचित है कि
बातका शोक न करे, भगवान्‌की इच्छासे जो कार्य हो
वह न्यायपूर्ण और मंगलमय ही होता है । दुःख आ
शोक करनेसे मनुष्यको मिल भी क्या सकता है ? गीतामें
श्रीकृष्णने भी यह आज्ञा दी है कि—

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥
(१२। १७

अर्थात् 'जो कभी हर्षित नहीं होता, द्वेष नहीं करता

यदि वह यों ही करता रहा तो बस, समस्त नागर-जाति
सत्यानाश हो जायगा ।' बीचमें ही प्रसन्नरायने तिलको ताड़ ब
कर सारा वृत्तान्त कह सुनाया ।

चौरेपर उपस्थित सभी नागरोंमें कोलाहल मच गया । स
लोग इस घटनापर अपनी-अपनी राय देने लगे । एक वृद्ध नाग
कहा—'बस, अब कलियुगका पूरा प्रभाव फैल गया; उच्च कुलोत
ब्राह्मण अन्त्यजके घर जाकर रातभर बैठा रहा ! पृथ्वी मा
कैसे ऐसे पापका बोझ सहन करेगी ? मेरे-जैसे वृद्धोंका तो अ
संसारमें जीना ही निरर्थक है ।' एक दूसरे वृद्धने कहा—'य
ऐसा अधर्म होने लगेगा तो थोड़े समयमें ही प्रलय हो जायगा ।' ए
तीसरे नागरने अपना फैसला सुनाया, 'तो फिर ऐसे पतितोंका प
हम कबतक देखते रहेंगे ? आजसे ही उसे जातिसे बाहर क
देना चाहिये, आप ही उसका मिजाज ठिकाने आ जायगा ।'

कुछ लोगोंने कहा कि 'वह तो भजन करने गया था, वह
कोई खान-पानकी बात तो थी नहीं फिर क्यों ऐसा किया जात
है ?' परन्तु नगाड़ेके सामने तूतीकी आवाज कौन सुनता !

उपस्थित सभी जाति-नेता इस बातपर सहमत हो गये
सबने यह निश्चय किया कि आजसे नरसिंह मेहता जातिच्यु
समझा जाय और उसके साथ खान-पान आदि व्यवहार बंद क
दिया जाय । इस प्रकार भक्तराजको जातिसे बहिष्कृत करके
त-नेताओंने अपनी दृष्टिसे अपनी जातिकी पवित्रताकी रक्षा की
इससे उन्हें बड़ा सन्तोष हुआ ।

[illegible] तो गंगास्नान करके प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। इस [illegible] क्या कोई और उपाय है?"

'सारंगधरजी! भक्त नरसिंहरामको जातिच्युत करनेका ही यह परिणाम मालूम होता है। अब तो अपने कियेका हमें फल भोगना ही पड़ेगा।' अनन्तरायने कहा।

'तो क्या यह सब उसी जादूगरके हथकंडे हैं?' सारंगधरने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

'नहीं भाई! ऐसी बात नहीं है। नरसिंहराम भगवान् श्रीकृष्णके एकनिष्ठ सच्चे भक्त हैं। प्रायश्चित्तद्वारा हम अन्य पापोंसे तो कदाचित् छूट सकते हैं; परन्तु एक सच्चे भक्तके प्रति किये गये अपराधरूप पापसे गंगास्नान करने या अन्य प्रायश्चित्त करनेसे कदापि हमें मुक्ति नहीं मिल सकती। यदि मेरी बातपर किंचित् भी विश्वास हो तो शीघ्र उन वीतराग महात्माके चरणोंमें प्रणाम करके उनसे क्षमायाचना करो तथा उन्हें जातिमें मिलाकर अपने साथ भोजन कराओ। हमारे अपराधका यही प्रायश्चित्त है।' अनन्तरायने स्पष्टरूपमें सुना दिया।

अनन्तराय नरसिंहरामके मामा लगते थे। विद्वत्ता, वाक्पटुता [illegible] आदि सद्गुणोंके कारण समग्र जातिमें उनका बड़ा [illegible] जातिके सब लोगोंको उनके वचनोंपर विश्वास हो [illegible] दो-चार प्रतिष्ठित पुरुष उसी समय नरसिंहरामके [illegible] समय नरसिंहराम भगवान्को नैवेद्य समर्पित कर

१७ देनदार व्यापारीका लाभ कमलपत्रके ऊपरके पा
ा अनिश्चित–चंचल है।

१८ कर्ज व्यापारका क्षयरोग है और क्षयरोगकी उपेक्षा य
ाको बुलाना है।

१९ साखसे कर्ज लेकर हिस्सेदारीमें खूब नफा उ
टि काम है। इस तरह लाभ उठाना भाग्यवानोंका चिह्न है।

२० व्यापारी धनवान् है या नहीं यह उसकी आयसे
ानसे जाना जाता है।

२१ दूसरेकी पूँजी और अपना ज्ञान, इनके योगसे व्या
ना व्यापारी कौशल है। यह पूँजी कर्ज न होना चाहिए। पूँज
अपने लाभके विचारसे स्वयं दे, ऐसी पूँजी होनी चाहिए।

२२ जिसके पास पूँजी न हो ऐसे मनुष्यको चाहिए कि
करी कर विश्वास जमावे, धरोहर रख द्रव्य सम्पादन करे और
न्त्र धंदा करे।

२३ साख, ज्ञान और नक्द पूँजी, इन तीनोंकी जिसके
मान अनुकूलता न हो उसे अपनी जवाबदारी पर व्यापार न क
हिए। ऐसे मनुष्यको उचित है कि वह उम्मीदवारी, नौकरी
सेदारीकी श्रेणियों पर क्रमशः चढ़े। एकदम ऊपर न कूदे। उ
दम कदाचित् चढ़ जाय और नीचा गिरे तो फिर चढ़नेकी कोशि
नी चाहिए।

२ नामा–बहीखाता।

१ व्यापारीको चाहिए कि वह रोज आयव्यय लिखकर
उस मैत्रान करे।

चौरेपर उपस्थित नागरोंमें नरसिंहरामकी ही चर्चा चल रही थी। यात्रियोंकी बात सुनकर एक ईर्ष्यालु नागरने तुरन्त उत्तर दिया—'आपलोग नरसिंह मेहताके घर चले जाइये। द्वारिकामें उनकी बहुत बड़ी पेढ़ी (दूकान) है। हुंडी वहीं सांइन हो जायगी। आपलोगोंको अन्य स्थानमें ऐसी सुविधा नहीं मिलेगी।'

दो एक और नागरोंने भी व्यङ्ग्यसे हाँ-में-हाँ मिला दी। बेचारे यात्रियोंको विश्वास हो गया और वे पूछते-पूछते मेहताजीके घरपर आ पहुँचे। भक्तराज भगवद्भजनसे निवृत्त होकर भगवान्‌को नैवेद्य समर्पित कर रहे थे। यात्रियोंने मेहताजीको नमस्कार किया। भक्तराजने अभिवादनका उत्तर देनेके बाद उन्हें आसन, जल और भगवत्प्रसाद प्रदान कर उनका यथोचित सत्कार किया और फिर आगमनका कारण पूछा।

'नरसिंहरामजी! हमलोग परदेशी यात्री हैं। जूनागढ़से द्वारिकापुरीका मार्ग विकट होनेके कारण द्रव्य लेकर चलना हमें अनुचित और भयावह प्रतीत होता है। अतएव ये सात सौ रुपये लेकर यदि आप द्वारिकाकी हुंडी लिख दें तो बड़ी कृपा होगी।' एकने नम्रतापूर्वक कहा।

'हरिजनो! मेरा घर आपलोगोंको किसने बताया?' भक्तराजने हँसते हुए पूछा।

'भक्तराज! यहीं पासमें एक चौरेपर कुछ भले आदमी बैठे थे, उन्हीं लोगोंने आपका परिचय देकर विश्वास दिलाया है कि यहाँ द्वारिकाकी हुंडी मिल जायगी।' यात्रीने उत्तर दिया।

हुंडी लेकर चारों यात्री यहाँसे रवान
नैवेद्य समर्पित कर भक्तराज भगवान्से
भक्तवत्सल भगवन्! आपके ही विश्वासपर
क्या आप उसे स्वीकार करके मेरी प्रतिष्ठ
नाथ! मैं तो समझता हूँ कि उससे
प्रकारकी हानि नहीं पहुँचेगी; बल्कि ज
होगी। दयालु दामोदर! क्या आपको ख
दो दिनपर्यन्त सारी जातिको भोजन कराना
मैंने यह धृष्टता की है, और वह भी केव
लिये। जगन्नाथ! आपके भण्डारमें सात सं
है? आपने मरणोन्मुख गजेन्द्रकी प्राणद
पाञ्चालीको भरी सभामें अक्षय चीर प्रदान करके
थी। इतना ही नहीं, प्रत्युत मेरे ही पुत्रके
श्राद्धमें तथा अन्य व्यावहारिक प्रसंगोंपर आप
है। क्या इन सात सौ रुपयोंका प्रबन्ध आप

प्रार्थना करते समय भक्तराजके नेत्रोंसे
था। इतना कहकर वह भगवान्की प्रतिमाके
वह कबतक इस स्थितिमें पड़े रहे, इसः
खबर न रही।

दूसरे दिन प्रातःकालसे ही जातिभोजकी

द्वारका छिपे हुए थे। उन्होंने मन्दिरके पास
चबूतरेपर अपना आसन जमा दिया।

इधर चारों यात्री गोमती-स्नान करके
आये। वे भगवान्के दर्शन कर मन्दिरमें नि
चलनेका विचार करने लगे। मन्दिरसे चलते
दृष्टि इस नयी गद्दीपर पड़ी। उन्होंने सोचा,
यहाँ भी पूछ लें। उनमेंसे एकने प्रश्न किया—
शुभ नाम क्या है?'

'मेरा नाम है शामळशाह वसुदेव।' सेठ
उत्तर दिया।

यह सुनते ही यात्रियोंके सूने हृदयपर आ
हो गयी। अनायास सेठजीके मिल जानेसे उ
हुआ। उन्होंने तुरन्त सेठजीके हाथमें हुंडी
हुंडी देखकर उसे मुनीमके हाथमें दे दिया और
चुका देनेकी आज्ञा दे दी। मुनीम अक्रूरजीने पू
गिनकर यात्रियोंके सम्मुख रख दिये।

यात्रियोंने रुपये गिनकर ले लिये और हुंडी
दी। रुपये प्राप्त कर यात्रियोंने नरसिंहरामकी व
और उनका सारा हाल सेठरूपधारी भगवान्से सुन
भी भक्तकी प्रशंसा करते हुए कहा—'नरसिंहराम
हैं; मैं तो उनका एक आज्ञाकारी हूँ।'

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने भक्तप्रवर नर

[illegible] हो होता है, परन्तु वह [illegible]
[illegible] रहता है और किसी भी गृहस्थके लिये [illegible]
असह्य हो [illegible] है। [illegible]
[illegible] और अपना अहित [illegible]
करते हैं, वे भी अपने पापके [illegible] करनेमें असमर्थ
[illegible] भीतर-ही-भीतर, [illegible]
[illegible] किया करते हैं, वे
गृहस्थोंको दूर करनेमें असमर्थ रहते हैं। इस अवर्णनीय गृहस्थ
[illegible] इससे अधिक और क्या वर्णन किया जाय! [illegible]
भारतकी इन [illegible] रक्षा करें।

भगवान् नरसिंहरामकी प्रिय पुत्री कुँवरबाईका विवा
सुसम्पन्न शिक्षित परिवारमें हुआ था और वह जबसे ससुरा
थी तबसे बराबर ही कुलोचित धर्मका पालन पूर्णरूपसे क
चेष्टा करती थी; वह कभी किसी काममें जी नहीं चुराती थी
सदा सबके साथ आदर और प्रेमका बर्ताव करती
फिर भी घरमें उस बेचारीका मान नहीं था। घरमें निरन्तर
रहता था। सास, जेठानी और ननद सभी उसपर वाग्बाण बर
करते थे। एक तो वह गरीब घरकी लड़की थी, दूसरे उसका
वसन्तराय दुर्व्यसनी, लम्पट और क्रोधी था। इस कारण उ
शिकायत भी कोई नहीं सुनता था। वह बेचारी भीतर-ही-भ
अपनी व्यथासे नित्य घुला करती थी।

इसके अतिरिक्त एक तीसरा कारण और उपस्थित हो ग

हमारे यहां इस नामकी ग्रन्थमाला कोई ६
संसारमें इसने बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त की है । इसमें
आदरकी दृष्टिसे देखे जाते हैं । छपाई बहुत
ग्राहकोंको सब ग्रन्थ पौनी कीमतमें मिलते हैं
स्थायी ग्राहक बन जाते हैं । अबतक नीचे लि

जिन ग्रन्थों पर * चिह्न है, वे सीरीजमें
शित किये हुए जुदा ग्रन्थ हैं ।

उपन्यास और गल्पें ।

प्रतिभा	१)
फूलोंका गुच्छा	॥-)
आँखकी किरकिरी	१॥)
शान्ति-कुटीर	॥।=)
अन्नपूर्णाका मन्दिर	॥।)
छत्रसाल	१॥)
हृदयकी परख	॥।=)
नवनिधि	॥=)
* कनकरेखा	॥।)
* मणिभद्र	॥=)
* दियातले अँधेरा	-)॥
* भाग्यचक्र	-)
* ब्रह्मचारी बालक	=)

नाटक और प्रहसन ।

[illegible]	≡)

प्राय
मेवा
नाह
टोक
उस
तारा
सूरज
आँख
चन्द्र
गीत
भार
आर्द
अमा
[illegible]

टोपीमें हैं तीन गुन, नहिं मुनीम नहिं सेठ।
खावा खावा सब करें, और भरे मुतांसे पेट॥

फिर उसको और चाहिये भी क्या ? बस,
शालिग्राम पत्थरसे माथाकूट······!'

वह इसी धुनमें न मालूम और क्या-क्या कह डालती
इसी बीच श्रीरंगधर मेहता घरमें आ गये और मामला शा
गया। उन्होंने पत्नीकी आवाज तथा बहूकी रुलाई सुनकर
क्रोधावेशमें पूछा—'क्या बात है ? आज बहू रो क्यों रह
तुम दोनों माँ-बेटी क्यों इस गरीब लड़कीके पीछे बराब
रहती हो ?'

'बात कुछ नहीं है। बहू कहती है कि मेरे पिताजीं
कुंकुमपत्रिका भेजिये और मैं कहती हूँ कि कोई जरूरत न
श्रीरंगधरकी पत्नीने उत्तर दिया।

'इसमें कौन बात है ? मैंने तो इसलिये पत्रिका नहीं
कि इससे भक्तराजके भजनमें व्यर्थ बाधा पहुँचेगी और कुछ
भार आ जानेसे उन्हें कष्ट भी होगा। यदि बहूकी ऐसी ही
है तो मैं आज ही ब्राह्मणके हाथ कुंकुमपत्रिका भेज देता
श्रीरंगधर मेहताने शुद्ध हृदयसे आश्वासन देते हुए कहा।

अपने वचनके अनुसार श्रीरंगधर मेहताने तुरत एक ब्राह्म
बुलाया और आमन्त्रणपत्र उसे देकर जूनागढ़ भेज दिया। कुँवर
को इस बातसे सन्तोष हुआ और वह प्रसन्नतापूर्वक अपने
कार्यमें लग गयी।

दरिद्रता तीनोंका नाश करते हैं । फिर इनसे
आत्मीय और सम्बन्धी कौन हैं! सांसारिक भाई-
स्वार्थपर निर्भर करते हैं । अगर स्वार्थ सिद्ध न हो त
भाई-बहन, सगे-सम्बन्धी जितने हैं, सभी विराने ह
अतएव मैं ऐसी कल्याणकारिणी साधुमंडलीको छ
सम्बन्धियोंका संग जान-बूझकर कैसे करूँ !' नरसिंह

'अच्छा, पिताजी ! संगकी बात जाने दीजिये
मेरी सास, ननद और अन्य कुटुम्बियोंके लिये आप
प्रकारके लाये हैं ?' कुँवरबाईने उत्सुकतापूर्वक पूछा ।

'पुत्री ! तुम तो जानती ही हो कि तुम्हारा
पिता कुछ भी करनेकी शक्ति नहीं रखता; जो कुछ क
वही दीनदयालु करेंगे ।' भक्तराजने निश्चिन्ततापूर्वक

'पिताजी ! कल ही तो सीमन्तका मुहूर्त है औ
में कुछ भी लाये नहीं; फिर भगवान् किस प्रकार पहुँच
वह कहाँ रहते हैं, यह भी तो निश्चित नहीं !' अ
कुँवरबाईने कहा ।

'बेटी ! तुम यह क्या कह रही हो ? तुम इ
क्यों रही हो ? तुमने तो उन प्रभुकी दीनदयालुता
है । तुम्हारे भाई शामलदासके विवाह-कार्यमें उन्हों
श्रम किया था ? तुम्हारी विदाई स्वयं भगवान्ने ही त

रागमें भगवान्‌का कीर्तन शुरू कर दिया। कीर्तनका भाव इस प्रकार था—

'भगवन्! क्या आपने सुधन्वाकी तेलकी कड़ाईको अपनी कृपासुधाके द्वारा शीतल नहीं बना दिया था? यह भी तो उसी प्रकारका कार्य है प्रभो! आपने अनेक बार मुझे सहायता दी है; क्या इस धर्मसंकटसे मुझे पार उतारनेमें आप असमर्थ बन जायँगे! हे मेरे श्यामघन! तुरन्त जल बरसानेकी कृपा करें और इन मज़ाक करनेवालोंका मुँह बंद कर दें।'

भजन समाप्त होते-होते माघ मासका निर्मल आकाश घन-घोर काली घटाओंसे छा गया। देखते-देखते सावन-भादोंकी तरह मूसलाधार जल बरसने लगा। बने-ठने सब लोग भींग गये, भगवान्‌की कृपासे भक्तराजका उष्णोदक शीतल हो गया, वर्षा बंद हुई तब स्नान करके वह भी सब लोगोंके साथ भोजन करनेके लिये आसनपर बैठ गये। सब लोग उनकी भक्ति देखकर आश्चर्यमें डूब गये। फिर भी सबको भगवान्‌पर विश्वास नहीं हुआ, उन्होंने समझा, इसमें नर-सिंहरामकी कोई जादूगरी होगी!

दूसरे दिन प्रातःकालसे ही सीमन्त-संस्कार आरम्भ हो गया। श्रीरंगधर मेहताका आँगन विद्वान्-ब्राह्मण, सगे-सम्बन्धी, कुल-परिवार, युवा-वृद्ध-बालक, स्त्री-पुरुष इत्यादि लोगोंसे खचाखच भरा हुआ था। नाना प्रकारके बाजे बज रहे थे और मंगल-गीत गाये जा रहे थे। धीरे-धीरे वैदिक विधिके अनुसार सांगोपांग सीमन्त-संस्कार सम्पन्न हुआ। अब सम्बन्धियोंको चीर प्रदान करनेका

यह सुनकर सभी खिल- हँस पड़ी । कुँवरबाई लज्जा और आतङ्कके मारे सिकुड़ गयी, काँपने लगी, मानो गड़ी-सी उसने सत्ता आई । परन्तु किसीने भी कहींसे खिसक और इस समय पर ही बना सकते थे ! एक अनुभवी बूढ़ा भी ताककर कहा कहा ... —भगवान्‌के ऐसे ऐश्वर्यके सामने हँसी नहीं उड़ानी चाहिये । मालूम नहीं, वे क्या लीला कर डालें । भगवान्‌की कृपासे क्या नहीं हो सकता ! क्या तुमलोगोंने द्रौपदीके चीर बढ़नेकी बात नहीं सुनी है !'

जगत्‌के समालोचकोंकी कमी नहीं । प्रत्येक मनुष्य चाहे उसे कुछ ज्ञान हो या न हो, वह अपनी बुद्धिके अनुसार दूसरोंकी समालोचना करता ही रहता है । समालोचनामें इतनी प्रबल चाह रहा करती है कि यदि साधक अस्थिर चित्तवाला हो तो उसे पथभ्रष्ट होते भी देर नहीं लगती । भक्तराज नरसिंह-राम तो ऐसी सांसारिक बाधाओंसे एकदम परे थे, उन्हें इतनी कहाँ फुरसत थी कि वह दूसरोंकी समालोचना सुनते ! वह तो तन्मय होकर बस भगवान्‌का आवाहन कर रहे थे । आखिर उनकी एकमुखी दीन पुकार सात लोकोंको भेदकर दिव्य भगवद्-धाममें पहुँच ही गयी और भक्तवत्सल भगवान् तत्काल भक्तका कार्य करनेके लिये तीव्र गतिसे चल पड़े ।

भक्तराजका कीर्तन समाप्त होते ही मंगल गीत गाती हुई अनेकों दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित दिव्य तेजोमयी सुन्दरियोंके साथ एक सेठके रूपमें स्वयं भगवान्‌ने संस्कार-मण्डपमें प्रवेश

तिलक किये और गलेमें तुलसीकी म
के घरमें प्रवेश किया । उस समय
तरह शोभा दे रही थी । उपस्थित सं
वह एक ओर बैठ गयी और बड़े भाव
हरिकीर्तन करने लगी । सभी साधु,
भी मन्त्रमुग्धकी तरह उसकी तन्मयत

भजन समाप्त होनेपर भक्तराजने
आपका शुभनिवास कहाँ है ?'

'मेरा निवास प्रभास-क्षेत्रमें है;
आपका नाम सुनकर एक कार्यके लिये
चञ्चलाने अपना मिथ्या परिचय दिया

'ऐसा कौन-सा कार्य है जिसके लि
जरूरत पड़ी ?' भक्तराजने विस्मयके स

'मैं एक दान लेनेकी इच्छासे
उत्तर दिया ।

'साध्वी ! यदि तुम्हें किसी तरह
तुम किसी श्रीमन्तके घरपर जाओ । मे
मृदंग और गोपीचन्दनके अतिरिक्त और

वह अपने आसनसे उठी और मन्दगतिसे भक्तराजके आसनके पास आयी। उसके चरणोंकी नूपुर-ध्वनि सुनकर भक्तराज जग उठे।

'कौन है, इस समय ?' भक्तराजने प्रश्न किया।

'मैं वही हूँ, जो आपके साथ भजन कर रही थी।' चञ्चलाने उत्तर दिया।

'फिर इस समय तुम यहाँ क्यों आयी ?' भक्तराजने पुनः प्रश्न किया।

'नरसिंहरामजी ! मैं आज आपके पास ऋतुदान लेने आयी हूँ, जिसके लिये आपसे शामको मैंने प्रार्थना की थी। मैं अन्य किसी वस्तुकी इच्छा नहीं करती। आप............' चञ्चलाने कहा।

चञ्चलाकी इस निर्लज्जताको देखकर नरसिंहराम अवाक् हो गये। उनके मुँहसे केवल 'हरि, हरि' शब्द निकल पड़ा।

चञ्चलाने पुनः अधीर होकर कहा—'भक्तराज ! आप अब मुझे अधिक न सताइये; शीघ्र मेरी मनोकामना पूरी करके मुझे सन्तुष्ट कीजिये।'

'साध्वी ! तुम यह क्या कह रही हो ? क्या मेरे पास तुम यही दान लेनेके लिये आयी हो ! साधुका स्वाँग धारणकर ऐसा नीच विचार मनमें भी रखनेसे मनुष्य पापका भागी बनता है और अन्तमें अधःपतनके गहरे गर्तमें गिरता है। मनुष्य-जीवन पाप [illegible] लिये नहीं, अक्षय पुण्यका उपार्जन करनेके लिये है; [illegible] लिये नहीं, संयमके लिये है; वासनाकी तृप्तिके लिये
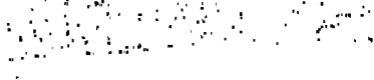
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥
(मनुस्मृति)

घृतकी आहुतिसे अग्नि विशेष प्रज्वलित होती है, इसी प्रका
इच्छाओंकी तृप्ति करनेसे वे भयंकर रूप धारण करके मनुष्यव
सत्यानाश करनेमें सहायता करती हैं।

'संसार भी एक प्रकारका महारोग है; उसको दूर करने
लिये भगवन्नामस्वरूप दिव्य ओषधि बड़ा ही उपकार करनेवाली है
परन्तु उस ओषधिसेवनके साथ-साथ विषयादिरूप कुपथ्यका सेव
करते रहनेसे नये-नये रोगके अङ्कुर उत्पन्न होते रहते हैं और इसलि
महारोगका नष्ट होना कष्टसाध्य हो जाता है। इतना ही नहीं,
विषयासक्तिके बढ़ जानेसे भगवन्नाम छूट जाता है और यह महारो
सन्निपातका भीषण स्वरूप धारण कर लेता है।

'यह जीव अनेक जन्मोंसे संसारके इन्द्रियजनित विषयसुखका
अनुभव करता आ रहा है, परन्तु फिर भी उसको तनिक भी
सन्तोषका अनुभव नहीं हुआ है। अतः शास्त्रकारोंने तथा अनुभवी
महात्माओंने यह निश्चय किया है कि यह संसार अनित्य और
सुखहीन ही है। भगवान्ने कहा है—

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥

इस अनित्य और सुखहीन संसारको पाकर मुझको भजो।
अतएव केवल आत्मचिन्तन और भजनका दिव्यानन्द ही सच्चा सुख

भक्तराजकी कसौटी

कहते हैं, सर्पको दूध पिलानेसे उसका विष ही बढ़ता है। यद्यपि भक्तराज नरसिंहरामने स्वाभाविक दयासे ही सारंगधरको जीवनदान किया था, फिर भी उसपर उसका उलटा ही प्रभाव पड़ा। उसने समझा, नरसिंहराम जादूगर है और यह सब उसीकी दुष्टताका फल था। अतएव भक्तराजके प्रति उसके मनमें द्वेषाग्नि और भी अधिक भभक उठी।

जिस समयका यह प्रसंग चल रहा है, उस समय जूनागढ़के राज्यासनपर राव माण्डलीक नामक क्षत्रिय राजा विराजमान था। सारंगधर भी राज्यके एक प्रतिष्ठित पदपर नियुक्त था। सारंगधर चञ्चलाद्वारा भक्तराजका मानभंग करनेमें समर्थ न

भक्तराजने कहा—'महाराज ! मेरे पास तो रुपया नहीं है। परन्तु थोड़ी देर आप यहाँ बैठिये; चेष्टा करता हूँ; यदि ईश्वरकी कृपा हुई तो आपका कार्य हो जायगा।'

नरसिंहराम ब्राह्मणको घरमें बैठाकर स्वयं बाजारमें गये और उन्होंने कई अपनी जान-पहचानके लोगोंसे साठ रुपये उधार माँगे। परन्तु इस तरह कोई रुपया देनेके लिये राजी नहीं हुआ। लोगोंको भय था कि यह फिर रुपया कैसे लौटा सकते हैं।

अन्तमें नरसिंहराम धरणीधर नामक एक नागरके घरपर आये। धरणीधर एक भक्त आदमी था और नरसिंहरामपर उसकी कुछ श्रद्धा भी थी। परन्तु था वह बड़ा स्पष्टवादी। जब नरसिंहरामने अपना सारा हाल उसे सुनाया तो उसने 'आहारे व्यवहारे च स्पष्टवक्ता सुखी भवेत्' इस न्यायके अनुसार स्पष्ट ही कहा—'नरसिंहरामजी ! वैसे तो मुझे आपको रुपया देनेमें कोई आपत्ति नहीं है; परन्तु रुपये-पैसेका मामला जरा टेढ़ा है। केवल जबानपर विश्वास रखनेकी अपेक्षा कोई वस्तु गिरों रख लेना उत्तम है। यदि आप कोई चीज ले आवें तो मैं अभी साठ रुपये दे सकता हूँ।'

भक्तराजने विचार किया, मेरे पास कोई वस्तु गिरों रखने योग्य तो है ही नहीं। तो क्या अब ब्राह्मणका कार्य नहीं होगा ? एक क्षण सोचनेपर एक उपाय उन्हें सूझा। उन्होंने सोचा कि मेरे पास सबसे प्रिय वस्तु केदार राग है। भगवान्‌का आवाहन मैं इसी रागके द्वारा किया करता हूँ। इस रागके बिना मेरा कार्य

भक्तराज दरबारमें

दूसरे दिन राव मण्डलीकके दरबारमें भक्तराज हाजिर हुए। सारंगधर, मंगलिया, अनन्तराय इत्यादि अपने ही कुटुम्बीजन नरसिंहरामका अपमान करनेके लिये इस तरह उत्सुक होकर दरबारमें बैठे थे, जिस तरह बकरेको काटनेके लिये कसाई ही दुबला कुल्हाड़ीका पेट बना हुआ रहता है। भक्तराजको बलहीन ठहरानेके लिये सारंगधर अपने साथ शहरके दो-चार संन्यासियों-को रुपयेका लालच देकर ले आया था। जब सब लोग आकर यथास्थान बैठ गये तब राजाने सारंगधरकी मंडलीकी ओर देखते हुए कहा—'कहिये, आपलोगोंका क्या कहना है!'

'राजन्! यह नरसिंहराम इस शहरमें रहकर अनेक प्रकारके ढोंग रचकर जनताको भ्रममें डाल रहा है; भक्तिका झूठा बहाना बनाकर अनेक प्रकारके अनाचारोंका पोषण कर रहा है

भजन करनेका अधिकार आबालवृद्ध स्त्री-पुरुषको समान है। इस विषयमें मैं अपनेको दोषी नहीं समझता। मैं अपने राधेश्यामके नामके सिवा और कुछ भी नहीं जानता। मैं तो अपने पास आकर भजन करनेवालोंका प्रतिरोध करके उनका जी दुखाना स्वयं भगवान्के प्रति दोष करनेके बराबर समझता हूँ। फिर आप राजा हैं; आपमें भी परमात्माका अंश वर्तमान है; आप स्वयं विचार कर देख सकते हैं कि मैं इस विषयमें दोषी हूँ या निर्दोष। यदि मेरा दोष आपको जान पड़े तो आप मुझे उचित दण्ड दे सकते हैं।' भक्तराजने सरलतापूर्वक निवेदन किया।

महात्माओंका हृदय अत्यन्त कोमल और दयालु होता है। वे स्वयं आपत्तिमें पड़ जानेपर भी अपने मुँहसे अपराधी मनुष्योंको भी अपराधी नहीं कहते। भक्तराज जानते थे कि इन लोगोंने ईर्ष्यावश ही यह सब काण्ड रचा है, तथापि उन लोगोंको दोषी ठहराना भक्तराजके लिये पाप ही था।

भक्तराजका कथन सारंगधरसे नहीं सहा गया। वह तुरन्त अपने आसनसे उठकर कहने लगा—'नरसिंहराम! तुम बहुत अनर्थ कर रहे हो। तुम्हें शास्त्रज्ञान तो बिल्कुल नहीं और बन बैठे हो उपदेशक। यदि तुम अपनेको उपदेश देनेका अधिकारी समझते हो तो इन संन्यासियोंके साथ शास्त्रार्थ करो और इस सभामें अपनी सर्वज्ञता सिद्ध करो।'

'भाई न तो मैं शास्त्रज्ञ हूँ और न सर्वज्ञ। परमात्माके सिवा इस जगत्में कोई भी सर्वज्ञ होनेका दावा नहीं कर सकता।

अर्थात् हे मन ! जबतक तुम आत्मतत्त्वको पूर्णरूपसे न जान लेते तबतक सभी साधन झूठे हैं; तुम्हारा मनुष्य-तन शरद् ऋतुकी वर्षाके समान व्यर्थ ही चला जा रहा है ।

स्नान, सेवा-पूजा, दान करने तथा भस्म लगाकर नेत्रोंको रक्तवर्ण बनानेसे क्या लाभ ! और तप, तीर्थसेवन, जप, तिलक, माला धारण करने एवं गंगाजल पान करनेसे ही क्या हुआ ! वेद, व्याकरण और वाणी बोलने, राजा और रंकको पहचानने, देवदर्शन और पूजा करने तथा वर्ण-भेद समझनेसे क्या हुआ ?

क्योंकि ये सब केवल पेट भरनेके प्रपंच हैं । इन साधनोंके द्वारा परब्रह्मस्वरूप आत्माका चिन्तन नहीं हो सकता । इसलिये नरसिंह कहता है कि आत्मदर्शन किये बिना तुमने इस चिन्तामणिके समान मनुष्यतनको भी व्यर्थ ही गँवा दिया ।

अतः भाई ! इस व्यर्थके झमेलेमें कौन पड़े ? शास्त्रार्थ उन्हीं लोगोंको मुबारक हो जिन्हें अपने पेटकी पड़ी है । मुझे तो रोटीका टुकड़ा मिल गया तो भी ठीक और न मिला तो भी ठीक । इस प्रकार भक्तराजने पण्डित-अपण्डितका विवेचन किया और आत्म-चिन्तनका महत्त्व बतलाया ।

भक्तराजके इस निर्भीक विवेचनको सुनकर उपस्थित सब लोग अवाक् हो गये । राजाने विचार किया कि पूर्णरूपसे परीक्षा किये बिना भक्तराजको दोषी या निर्दोष कुछ भी कहना न्याय-

भक्तराजने राजाके हाथसे पुष्पहार ले लिय
महलके मन्दिरमें जाकर भगवान् राधादामोदरके
दिया और भक्तिपूर्वक प्रणाम करके बाहर निक
मन्दिरके तालेको बड़ी सावधानीसे बंद करके च
रख ली ।

सारंगधरने अपना अधिकार प्रदर्शित कर
'नरसिंहराम ! यदि इस न्यायमें तू असफल रहा
तलवारसे तेरा सिर धड़से अलग कर दिया जायग

'भाई ! राजाके हाथसे, भगवान्‌के मन्दिरमें
सामने यदि मेरी मृत्यु हो जाय तो इससे ब
सौभाग्यकी बात होगी ! फिर मेरे आत्माको तो स्
नष्ट नहीं कर सकते और इन नाशवान् देहके नष्
किसी प्रकारका दुःख नहीं है । क्योंकि सत्यके लि
देहत्याग मुझे अमर बना देगा ।' भक्तराजने दृढ़तां

इतना कहकर भक्तराज मन्दिरके चौकमें बैठ
करने लगे । अन्य पक्षवालोंके साथ स्वयं राजा भी व
न्याय करनेके लिये बैठ गये ।

हार-प्रदान

किसी मनुष्यका जमा किया हुआ द्रव्य समय पाकर नष्ट हो जाता है; विद्या, यौवन और जीवन भी चञ्चल होनेके कारण काल-कर्मके अधीन होकर नष्ट हो जाते हैं। परन्तु भगवान्का भजन कालान्तरमें भी नष्ट नहीं होता। उसका फल यदि इस जन्ममें न भी मिले तो जन्मान्तरमें चक्रवृद्धि व्याजके साथ मिलता है; परन्तु मिलता जरूर है, बेकार नहीं जाता। भक्तराज इसी विश्वासको हृदयमें रखकर भगवान्का भजन कर रहे थे। परन्तु यह बात रह-रहकर उनके हृदयमें खटक रही थी कि मेरा प्रिय राग केदार तो साठ रुपयेमें बन्धक पड़ा हुआ है। उसके बिना भगवान्का आवाहन कैसे करूँगा? उन्होंने भगवान्का ध्यान

घरमेंसे बहुत पैसा था, परन्तु इस गानके
विह्वल हो उठता था ।

*　　*　　*

दिव्य वैकुण्ठधाममें भगवान् श्रीकृष्ण सो र
श्रीलक्ष्मीजी पादसेवन कर रही थीं । आधी रा
एकाएक जाग उठे और मानो कहीं जानेकी तै
प्रकार सहसा उन्हें तैयार होते देख श्रील
पार्षदोंको बड़ा आश्चर्य हुआ ।

श्रीलक्ष्मीजीने हँसते हुए प्रश्न किया-
अचानक आपकी निद्रा कैसे भंग हो गयी !
दैत्यका वध करनेके लिये आप इस समय
अथवा किसी पशुभक्त गजेन्द्रका उद्धार करना

'प्रिये ! तुमलोग इस रहस्यको क्या समझ
आये हुए समस्त जीव मुझे एक समान प्रिय हैं,
में हों या देवयोनिमें । परन्तु आज तो मैं एव
भक्तको सहायता देनेके लिये जा रहा हूँ; उस
राजको········।' इतना कहते-कहते बात अ
भगवान् अत्यन्त शीघ्रतासे चल पड़े । भक्तवत्सल

बातको भक्तराजके अतिरिक्त और किसीने नहीं देखा । भक्तराजने पत्र सामने गिरते देख कौतहलवश उसे उठा लिया । उन्होंने जब यह देखा कि यह तो मेरा ही प्रतिज्ञापत्र है तब तो उन्हें बड़ा विस्मय हुआ; फिर उन्होंने उसपरके नवीन अक्षरोंको पढ़ा । उसमें लिखा था—'आज आधीरातको जगाकर नरसिंहरामजीने मेरे पूरे साठ रुपये चुका दिये । अतएव मैंने भरपाई लिख दी; अब वह केदारराग प्रेमसे गा सकते हैं ।—धरणीधर राय ।'

पत्र पढ़ते-पढ़ते भक्तराजके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु छलक पड़े, कण्ठ भर आया, शरीरमें रोमाञ्च हो आया । उन्होंने सोचा, यह कार्य भी भगवान्‌का ही किया हुआ है । वह प्रेममें उन्मत्त होकर नाचने लगे । उनकी इस स्थितिको देखकर वहाँपर उपस्थित लोग नाना प्रकारकी कल्पनाएँ अपने मनमें करने लगे । अनन्तरायने कहा—'देखो, अब पोल खुल जानेके भयसे यह पागल बननेका दम्भ कर रहा है ।' सारंगधरने कहा—'प्रातःकाल होते ही राजाकी तलवार-से अपने-आप उसका पागलपन दूर हो जायगा ।'

परन्तु भक्तराजको इन सब बातोंसे क्या प्रयोजन था ? उनके दिलमें तो अनायास प्रतिज्ञापत्र प्राप्त हो जानेसे भगवान्‌के प्रति अनन्य प्रेम उमड़ पड़ा था । 'भगवान्‌के हृदयमें मेरे-जैसे क्षुद्र जीव-के लिये भी स्थान है ।' इस विचारने उन्हें पागल बना रक्खा था और वह बेसुध होकर प्रेमावेशमें नृत्य कर रहे थे । उन्हें यह भी स्मरण नहीं था कि अब प्रातःकाल होनेमें कुछ क्षण ही शेष रह गये हैं ।

सुदामाको कञ्चन-महल बनवा दिया था; एक धागेके बदले द्रौपदीके ९९९ चीर प्रदान करके उसकी लाज बचायी थी; कुब्जाका चन्दन ग्रहण करके उसे अनुपम सुन्दरी बना दिया था और गोप-बालकोंका गोवर्धनयाग स्वीकार करके उनकी रक्षाके निमित्त सात दिन-पर्यन्त अपनी कनिष्ठिका अँगुलीपर गोवर्धनगिरि उठानेका कष्ट उठाया था। तो क्या मेरी बार इस पुष्पहारके लिये ही आप कृपण बन जायँगे ?

'परमात्मन् ! राजाका कहना ठीक ही है; शर्त पूरी होनेसे काम चलेगा; अन्यथा इस कार्यमें यदि आप विलम्ब करेंगे तो माण्डलीकके खड्गसे मेरी मृत्यु हो जायगी। परन्तु नाथ! मैं मृत्युसे डरकर विनय नहीं कर रहा हूँ। मैं डरता हूँ आपकी अपकीर्तिसे। यदि शर्त पूरी न हुई तो पीछे संसार आपके नामपर हँसते हुए कहेगा—नरसिंहरामकी टेकका फल अच्छा मिला!

'किन्तु मदनमोहन! मैं भूल रहा हूँ। यह तो मैं अपने कर्मोंका फल भोग रहा हूँ। इसमें आपका बिल्कुल दोष नहीं है। परन्तु फिर भी नाथ! आपके सिवा दूसरे किसको पुकारूँ? अवश्य ही मेरे-जैसे आपको बहुत सेवक हैं; किन्तु नरसिंहरामके तो एक आप ही पति हैं। प्राण भले ही चले जायँ, भला वह अन्य पतिको कैसे खोज सकता है? मेरे प्राणकी रक्षा आप करें, या न करें, मैं तो आपके अतिरिक्त अन्य किसी पतिकी सेवा स्वीकार नहीं कर सकता। और ऐसा निर्लज्ज पति भी कौन होगा जो अपने प्रियजनको अन्य पतिके साथ रमण करते हुए देख सके!

भक्त और भगवान्

भक्तके सामने भगवान्के प्रकट होनेपर भक्तकी क्या दशा
ोती है, इसका वर्णन कौन कर सकता है ! भक्तराज अपने नेत्रों-
ो उन साँवरे सलोनेके दिव्य रूपरसका पान करने लगे। जब
ससे भी तृप्ति न हुई तो भगवान्के चरणकमलोंमें लिपट गये।

भगवान्ने हँसते हुए प्रेमभरे स्वरमें कहा—'नरसिंहराम ! आज
ने विनोदवश तुमको बहुत अधिक दुःख दे दिया।'

'क्षमा कीजिये कृपानिधान ! आपकी मायाके वशीभूत होकर
ब अधिक मैं इस असार संसारमें नहीं रहना चाहता। प्रभो !
स संसारमें तो दगाबाज, कुटिल, अन्यायी और नास्तिक लोगोंको
ी स्थान देना उचित है। जिस प्रकार शकटके नीचे चलनेवाला
ता शकटका सारा भार अपने ही ऊपर समझकर उसके नीचे-

'परन्तु भगवन् ! मैं तो संसारमें रहकर भक्ति क
आपको सदा ही अपने सांसारिक कार्योंके लिये कष्ट
और इस तरह दोषभागी बनता रहा । इस बातका मु
पश्चात्ताप हो रहा है ।' भक्तराजने निवेदन किया ।

'परन्तु वत्स ! मैंने तुम्हारा कौन-सा दुष्कर कार्य कर
है ? इन छोटे-मोटे कार्योंको करके भला तुम्हारी भक्तिका
दिया जा सकता है ? तुमने तो अपना तन, मन, धन–प्र
अपना सर्वस्व मेरे लिये न्योछावर करके मेरा भजन किया है, प्र
जानेका मौका आ जानेपर भी तुमने मेरे भजनसे विचलित होना पस
नहीं किया । इसके बदले मैंने किया ही क्या है ? अपने पुत्रका
विवाह, पिताका श्राद्ध, पुत्रीका दहेज और एक पैसेकी तुच्छ माला—
क्या इसीके लिये तुम ऐसा कह रहे हो ? ये कार्य तो एक साधारण-
धनिक भी कर सकता था । भक्तराज ! इन तुच्छ कार्योंको सम्पन्न
कर मैं तुम्हारी बहुमूल्य भक्तिके एक शतांशका भी बदला नहीं
सकता । क्या करूँ, मुझे अपने भक्तोंका कर्जदार बने रहनेमें
संतोष मिलता है । भक्तिका बदला चुकाकर मैं उसका महत्त्व
घटाना चाहता ।' भगवान्‌ने उदारतापूर्वक कहा ।

'परन्तु महाराज ! ऐसा समय कब आवेगा जब कि मैं
आपके चरणोंकी रज नित्य धारण किया करूँगा ।' भक्तराजने
अधीर होकर पूछा ।

'वत्स ! मैंने तुम्हें यह मनुष्यदेह भी ...
... दी है । शायद मेरी ...

अर्थात् क्षत्रियधर्ममें स्थि
द्वारा अनेकों जीवोंका वध किय
और मेरे आश्रित हो उस पापव
जन्ममें तुम सब भूतोंका हितव
मुझे प्राप्त होओगे ।

उस क्षात्रधर्ममें रहकर कि
कराकर मैंने तुम्हें इस उत्तम ना

भक्तराज ! अभी इस सं
रहकर जगत्‌में मेरी भक्तिका प्रच
कोई आपत्ति तुम्हारे ऊपर नहीं
मेरे इस अन्तिम दर्शनसे तुम्हारे
जायगी । जबतक तुम्हारे इस प
जाता तबतक तुम स्वानुभवके आ
करो । यही मेरी सेवा है ।' इस
अन्तिम आदेश सुना दिया ।

भक्तराजने भगवदादेश शिर

(२)

तूं तारा विरद सांहामूं जोजे शामळा, न जोइश करणी ह
हिरण्याकशिपुने हाथे हणीयो, मासी पुतना मारी रे।
प्रह्लादकारण स्थंभ मां वसीया, प्रगट्या देव मोरारी रे ॥ तूं
लाक्षाग्रेह मां जेम पांडव उगार्या, ब्रह्मांड ज्वाळा व्यापी रे।
अर्ध वचने गज गुणका तारी, जयदेवने पद्मिनी आपी रे ॥ तूं त
दुष्ट सभा मां जेम चीरज पुर्यां, लाज पंचाळिनी पाळी रे।
तेल कढा जेम शीतळ कीधी, वेळा सुधन्वानी वाळी रे ॥ तूं तार
ऋषिश्वरे जेम अहल्या श्रापी, ब्रह्म-सल्या थई भारी रे।
ते पण तारे चरणे रघुवर, थई अनोपम नारी रे ॥ तूं तारा०
मीरांबाईंना विख अमृत कीधां, विदुरनी आरोग्या भाजी रे।
सवरी ना जेम बोरज आरयां, तेनी प्रीते थया राजी रे ॥ तूं तारा० ॥

हे साँवरे ! तू अपने विरदकी ओर देखना, हमारी करनीकी ओर नहीं। हिरण्यकशिपुका अपने हाथसे हनन किया, पूतना मौसीको मारा, प्रह्लादके लिये खम्भेमें वास किया और फिर मुरारी प्रभु उसमेंसे प्रकट हो गये। लाक्षागृहमें जब प्रचण्ड अग्नि फैल गयी तब पाण्डवोंको बचाया, आधे नामकी पुकारपर गज और गणिका तारी, जयदेवको पद्मिनी दे दी। दुष्टोंकी सभामें वस्त्र बढ़ाकर द्रौपदीकी लाज बचायी, सुधन्वाकी उस कठिन समयपर तेलकी कड़ाही ठंढी करके रक्षा की। ऋषीश्वर गौतमके शापसे अहल्या भारी ब्रह्म-शिला हो गयी थी वह भी हे रघुवर ! तेरे चरणोंके स्पर्शसे अनुपम नारी हो गयी। तुमने मीरां... कर दिया, ...

(४)

समरने श्रीहरि, मेल्य ममता परी, जोने विचारीने मूळ तारूँ ।
तूं अल्या कोण ने कोने वळगी रह्यो, वगर समजे कहे म्हारूँ म्हारूँ ।।टेक।।
देह तारी नथी, जो तुं जुगते करी, राखतां नव रहे निश्चे जावे ।
देहसंबंध तजे नवनवा बहु थशे, पुत्र कलत्र परिवार वहावे ।। स० ।।
धन तणुं ध्यान तुं, अहोनिश आदरे, ए ज तारे अंतराय मोटी ।
पासे छे पिउ अल्या, तेने नव निरखियो, हाथथी बाजी गई थयो रे खोटी ।। स० ।।
भरनिद्रा भर्यो रूंधि घेर्यो घणो, संतना शब्द सुणी को न जागे ।
न जागतां नरसैया लाज छे अति घणी, जन्मोजन्म तारी खांत भागे ।। स० ।।

श्रीहरिका स्मरण कर, ममताको दूर कर, विचार करके देख तेरा मूल क्या है। अरे! तू कौन है और किसमें चिपट रहा है? बिना समझे ही मेरा मेरा कहता है। देह तेरी नहीं है, देख, तू चाहे जितने जतन कर, यह नहीं रहेगी, निश्चय ही चली जायगी। इस देहसे सम्बन्ध छूटनेपर तुझे नये-नये बहुत-से स्त्री, पुत्र और परिजन प्राप्त होंगे जो तुझे ठग लेंगे। तू रात दिन धनका ध्यान धरता है, यही तेरे मार्गमें बहुत बड़ा विघ्न है। अरे! प्रियतम तेरे समीप ही है, उसे तू किस प्रकार भूल गया? हाथसे बाजी निकल गयी तो व्यर्थ ही समय गया। घोर निद्रामें डूबा हुआ, रुँधा हुआ और अत्यन्त घिरा हुआ तू संतके शब्द सुनकर भी क्यों नहीं जागता? हे नरसी, न जगनेपर अत्यन्त ही लज्जाकी बात है और जगनेपर तेरा जन्म-जन्मान्तरका दुःख नष्ट हो जायगा।

वृक्षमां बीज तुं, बीजमां वृक्ष तुं, जोउं पटंतरो ए ज पासे ।
भणे नरसैंयो ए मन तणी शोधना, प्रीत करुं प्रेमथी प्रगट थाशे ॥अ०॥

वृक्षमें बीज तू है, बीजमें वृक्ष तू है, देखता हूँ कि पासमें ही पड़दा पड़ा है । नरसी कहता है कि यह मनकी प्राप्तव्य वस्तु प्रीति करनेसे प्रेमद्वारा प्रकट होगी ।

(६)

वास नहि ज्यां वैष्णव केरो, त्यां नव वसिये वासडीयां ।
श्वासेश्वास हरि स्मरण न करे जो, श्वास धमण केरी श्वासडीयां ॥वास०॥
जीभलडी जपमाळा न जपे तो, जीभलडी नहि खासडीयां ।
जनम तेनो नहि लेखामां, जे न कहेवाय हरि दासडीयां ॥वास०॥
मोहनजीनी माया पाखे, अवर माया जम फांसडीयां ।
भणे नरसैंयो भारे मरी, मावलडी दश मासडीयां ॥वास०॥

जहाँ वैष्णवका वास नहीं, वहाँ वसना नहीं चाहिये । जो श्वास-प्रतिश्वास हरिका स्मरण नहीं करता है, वह श्वास लोहारकी धौंकनीका श्वास है । जो जीभ जप नहीं करती है वह जीभ नहीं जूती है । जो हरिका दास नहीं कहलाया उसका जन्म किस गिनतीमें है ? मोहन प्यारेके प्रेमके सिवा और सब प्रेम यमराजकी फाँसी है । नरसी कहता है (जो हरिका भक्त नहीं है) उसकी माता दस महीने व्यर्थ ही बोझसे मरी है ।

वृक्षमां बीज तुं, बीजमां वृक्ष तुं, जोउं पटंतरो
भणे नरसैंयो ए मन तणी शोधना, प्रीत करुं प्रेमथं

वृक्षमें बीज तू है, बीजमें वृक्ष तू है, देखता
पड़दा पड़ा है। नरसी कहता है कि यह मन
प्रीति करनेसे प्रेमद्वारा प्रकट होगी।

(६)

धाम नहि ज्यां वैष्णव केरो, त्यां नव वसिये
श्वासेश्वास हरि स्मरण न करे जो, श्वास धमण केरी
जीभलडी जपमाळा न जपे तो, जीभलडी नहि
जनम तेनो नहि लेखामां, जे न कहेवाय हरि
मोहनजीनी माया पाखे, अवर माया जम
भणे नरसैंयो भारे मरी, मावलडी दश

जहाँ वैष्णवका वास नहीं, वहाँ बसना नह
श्वास-प्रतिश्वास हरिका स्मरण नहीं करता
लोहारकी धौंकनीका श्वास है। जो जीभ
वह जीभ नहीं जूती है। जो हरिका दास

(८)

वारी जाऊँ रे सुन्दर श्याम, तारा लटकाने ॥ टेक
लटके रघुवर रूप धरीने, वचन पितानां पाळ्यां रे।
लटके जई रणे रावण रोळ्यो, लटके सीता वाळ्यां रे ॥तारा लटकाने
लटके गिरि गोवर्धन तोल्यो, लटके वाळ्यो वंश रे।
लटके जई दावानळ पीधो, लटके मार्यो कंस रे ॥तारा लटकाने
लटके गौओ गोकुलमां चारी, लटके पलवट वाळी रे।
लटके जई जमुनामां पेठा, लटके नाथ्यो काली रे ॥तारा लटकाने
लटके वामन रूप धरीने, जाच्या बलीने द्वार रे।
त्रण डगलां पृथ्वीने काजे, बलि चांप्यो पाताल रे ॥तारा लटकाने
एवां एवां लटका छे घणां रे, लटकां लाख करोड रे।
नरसैंयांचा स्वामी संगे रमतां, होडं मोडामोड रे ॥तारा लटकाने

हे सुन्दर श्याम! तेरे लटकेपर मैं वारी जाता हूँ। लटकेसे ही तुमने रघुवररूप धरकर पिताके वचन माने, लटकेसे ही वनमें जाकर रणमें रावणका नाश किया। लटकेसे ही सीताको लौटा लिया। लटकेसे ही गिरि गोवर्धन उठा लिया। लटकेसे ही वंशको समेट लिया। लटकेसे ही दावानल पी गये और इस लटकेसे ही कंसका वध किया। लटकेसे ही गोकुलमें गाएँ चरायीं। लटकेसे ही उनको घर लौटायीं। लटकेसे ही यमुनामें प्रवेश किया और लटकेसे ही कालियनागको नाथ लिया। लटकेसे ही वामनरूप धरकर राजा बलिके द्वारपर याचना की और तीन पैंड पृथ्वीके लिये बलिको पातालमें दबा दिया। ऐसे-ऐसे लटके बहुत हैं, लाखों-करोड़ों हैं, नरसीके स्वामीके साथ खेलते-खेलते हृदय एकतार एकरस

(१०)

गाए गोपी गोविन्दना गुण, उलट अंग न माए रे।
छाश मसे ते शामळियानुं, मुखडुं जोवा जाए रे॥ टेक॥
दूध दही आगळ करी राखे, मांखण साकर मांहे रे।
घरनां द्वार उघाडां मूके, जो आवे ते खाए रे॥ गाए०॥
धन धन गोकुळ धन धन गोपी, कृष्णना गुण गावे रे।
निशदिन ध्यान धरे मन हरिनुं, हम जाणे घेर आवे रे॥ गाए०॥
जेनुं ध्यान धरे महा मुनीजन, ते स्वप्ने ना देखे रे।
ते शामळीओ प्रगट थईने, प्रेमदा प्रेमे पेखे रे॥ गाए०॥
यज्ञ करे त्यांहां प्रगट न थाए, ते गोपीना घर मांहे रे।
भणे नरसैंयो गोरस गमतुं, मांखण चोरी खाए रे॥ गाए०॥

गोविन्दके गुण गाती-गाती गोपी अंगमें फूली नहीं समाती है। छाछके बहानेसे वह साँवरियेका मुखड़ा देखने जाया करती है। घरके दरवाजे खुले छोड़ देती है और दूध, दही, मक्खन, मिश्री आगे करके रख देती है, इस इच्छासे कि वह (श्यामसुन्दर) आवे और खा जाय। गोकुल धन्य है, गोपियाँ धन्य हैं जिनको कृष्णके गुण भाते हैं। रात-दिन मनसे हरिका ध्यान धरती हुई यों मनाया करती है कि वह हमारे घर आवे। जिस साँवरेका महामुनिजन ध्यान धरते हैं परन्तु स्वप्नमें भी जिसे नहीं देख पाते, वही साँवरा प्रकट होकर उन स्त्रियोंको प्रेमसे देखता है। जो यज्ञ करनेपर भी प्रकट नहीं होता वह गोपियों-के घरमें रहता है। नरसी कहता है कि उसे (प्रेमका) गोरस प्यारा है इसलिये वह चोरी करके मक्खन खाया करता है।